

Municipal Library,  
NAINI TAL.



Class No. 8313

Book No. M 36 A

III

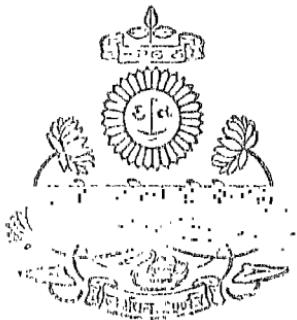




संपादक  
राजभस्तुतरदास ची० ए०

संपादक

राजभस्तुतरदास ची० ए०



हाशमी चापरी-प्रवासियों गवा की ओर से

प्रकाशक

हंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

Published by  
K. Mitra  
at The Indian Press, Ltd.,  
Allahabad.

Printed by  
A. Bose,  
at The Indian Press, Ltd.,  
Benares-Branch.

# आदर्श हिंदू

तीक्ष्ण भाग

लेखक

मेहता लज्जाराम शास्त्री

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१८२८

मूल्य ५।।



## सूची

विषय	पृष्ठ
( १ ) सेतालीसवाँ प्रकरण—विशाट् खरूप का चित्रपट	... ... ... १—१४
( २ ) अड़तालीसनाँ प्रकरण—श्री जगदीश का प्रसाद और अश्लोल मूर्तियाँ ...	१५—२५
( ३ ) उनचासवाँ प्रकरण—समुद्र स्नान की छटा	२६—३८
( ४ ) पचासवाँ प्रकरण—भगवान् में लीं ...	३५—४४
( ५ ) एक्यावनवाँ प्रकरण—काँता पर कर्त्तक ...	४५—५६
( ६ ) बावनवाँ प्रकरण—अपकार के बदले उपकार	५७—६६
( ७ ) तिरपनवाँ प्रकरण—दीनबंधु के दर्शन	६७—७१
( ८ ) चौबनवाँ प्रकरण—जनानी गाड़ी ..	७२—८८
( ९ ) पचपनवाँ प्रकरण—संयोग का सौभाग्य	८८—९८
( १०) छपनवाँ प्रकरण—पुष्कर में वालक साधु	१००—११०
( ११) सत्तावनवाँ प्रकरण—घुरह की कुकर्म कहानी	१११—१२०
( १२) घटावनवाँ प्रकरण—राग में विशाग ...	१२१—१३०
( १३) उनसठवाँ प्रकरण—ब्राह्मणों की जीविका	१३१—१४२
( १४) साठवाँ प्रकरण—घर चौपट हो गया... .	१४३—१५२
( १५) एकसठवाँ प्रकरण—मठाधीश साधु ...	१५३—१६४

[ २ ]

विपण		पूछ
(१६) वास्तुवाँ प्रकरण—गोरक्षा का नमूदा	१६५—१७३	
(१७) निरस्तुवाँ प्रकरण—नौकरी का इसामा	१७४—१८०	
(१८) चौमठवाँ प्रकरण—व्यापार में अत्यनिष्ठा	१८१—१८१	
(१९) फैमठवाँ प्रकरण—ग्रेन का माल	... १८८—१९०	
(२०) छाछठवाँ प्रकरण—बालशिक्षा और परोप-		
कार बल	... ...	२०१ - २०६
(२१) सड़मठवाँ प्रकरण—हाली का लोहार	२१०—२२०	
(२२) अड़सठवाँ प्रकरण—कुलटा का पछतावा	२२१—२२४	
(२३) उनहत्तरवाँ प्रकरण—प्यारा सिंगारदान	२२५—२२५	
(२४) सत्तरवाँ प्रकरण—उपसंहार	२२६—२२६	

# आदर्श हिंदू

तीसरा भाग

प्रकारण—४७

## विराट् स्वरूप का चित्रपट

श्रा जगदोशपुरी में प्रवेश करके जब तक यात्रा मार्कंडेय कंड के बिमल जल में स्नान दानादि नहीं कर लेते, भगवान् के दर्शन करने का उनसे योग्यता नहीं होती। यह वहाँ की चाल है, चाल क्या है पुरी के माहात्म्य में आङ्गा भी ऐसी नहीं है। गकान पर मामाम रखकर, डेरा छेंडा जम जाने पर शरीरकृत्य से निःत्त होकर पंडितजी प्रभृति नंगे पैरों स्नान करने के लिये गए। मार्ग में इन लोगों ने जो कुछ देखा उनका थांड़ा बहुत वर्णन समय आने पर किया जायगा किंतु एक बात यहाँ प्रकाशित किए विस्ता इस लेखक की लेखनी एकदम रुक गई। इसमें इस विचारी को कुछ दोष भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि जब कई महीनों से यह पंडित जी के पांचे पीछे चल रही है, जब इसे एक चण्ण के लिये भी उनका वियोग सह नहीं है और जब काम पड़ने पर यदि यह इधर उधर जाती भी है तो लपककर फिर उनके पास पहुँच जाती है

तब पंछिस जो कं गाय ही यह भी जक्की तो इसका दोप ही क्या ? और उन्हें भी इम समय दोपभागी नहीं कहा जा सकता । उन्हें श्री जगदीश के दर्शन की हजार थटपटी है, हजार वह चाहते हों कि जैसे बवे तेसे इस कार्य से निपुच्छ होकर वाचा के दर्शन करें क्योंकि दरी होने से यदि वट लंद हो जायेंगे तो। फिर चाप बजे तक की छुट्टी है । इसलिये उन्होंने मार्कडेय कुंड पर जाने में चाहे जितनी उनावल की किंतु उनके अंतःकरण ने उनके चरणों को एकदम रोक दिया । उनका हृदय पहले ही कोमल आ फिर वहाँ के सीन ने उसे मोम बना दिया, दयार्द्रु कर दिया । वह सजल नेत्रों से, अंतःकरण की भव्य बेदना के साथ, दया उत्पन्न करनेवाले शब्दों में अपने माथियों से और विशेष कर नौड़बोले से खड़े होकर कहने लगे —

“ओहं ! वडा भयानक हश्य है । देखते ही रोमांच हो उठे । हृदय विशीर्ण हुआ जाता है । आखें लंद कर लेने को जो चाहता है । देखने की इच्छा नहीं होती । वह कुछ इसलिये नहीं कि इनके घावों में से पीप वहता देखकर, मविख्यात मिनमिनाने से, दुर्गंधि के मारे माथा फटा जाने से घृणा होती हो । कल की किसने देखी है ? इनके पूर्व संचित धोर पापों के फल से अपने प्रारब्ध का परिणाम भोगने के लिये यदि ये आज कोड़ी हो गए तो क्या ? किसे खबर है कि कल हमें भी ऐसी यातना भोगनी पड़े । वास्तव में जो कुछ है, यहाँ का यहाँ है । “यह सूब सौदा नकद है, इस छाया दे

जय हाथ ले ।” अजा देखा तो साहब, इनकी बोलों औंगु-  
लियाँ गल गईं । चलना किना भी कठिन है । ओह ! नाक  
विक़कुल बैठ गई । हाय हाय ! इस बन्हें से बच्चे ने ऐसा  
कौन का पाप किया होगा ? अफसोस किसी की कोई घबर  
होने राजा नहीं । अच्छा इस औरत को तो देखो ! शरीर हाँकने  
के लिये, लाजा निवारण करने को एक कपड़ा नह नहीं ।  
पर्याय बाजाने के लिये एक चिरी तक नहीं । हाय हाय !  
पीप के पश्चात् बहकर धरती भिंगाए जाते हैं, मक्खियाँ गाट  
काटकर जांबों दय कर रही हैं । जब औंगुलियाँ गल गलकर  
हाथ पै । विक़कुल लुंज हो गए हैं तब इसके मुह में मुट्ठी चले  
गी कौन डालता होगा ? आदिस्त की भी मुशाकिल है । ओहो !  
दुर्गंध के गारे चक्कर आने लगे । जी व्याकुल होता है ।  
गिर पड़ने की इच्छा होती है । बड़ा भीषण दरय है । इच्छा  
होती है कि यहाँ से भाग चलें परंतु मन नहीं चाहता । देखिए  
देखिए ! राहत देखिए ! ऐसे एक दा, दम बीस नहीं । इनकी  
कुल अख्या दो सौ तीन सौ होगी । नूह की किस्ती है । आपने  
पांपों का परिश्राम योगने के लिये इकट्ठे हो गए हैं । मरकर यदि  
यमराज का जेलखाना देखने के अनंतर कोई अपना अनुभव  
सुनाने के लिये नहीं आता है तो न सही । यही यमराज का  
कारण ह समझो । इससे बढ़कर क्या होगा ? वास्तव में इनका  
कष्ट देखा नहीं जाता । यदि मनुष्य में शक्ति हो तो राजा की  
वर्षगांठ पर जैसे कैदी छोड़े जाते हैं वैसे इन विचारों का तुरंत

बुटकाना कर दें किंतु यह सामर्थ्य ईश्वर के बिना किसी में  
नहीं । और ! हन्तोंने पाप किए हैं और ये ढंड भोगते हैं और  
सो भी भगवान् की डंडोंपर पर पड़े पड़े भोगते हैं तो किसी न  
किसी दिन उस ध्यानागर की इन पर अद्वय द्वया होगी किंतु  
जब तक अपने कुकर्मी का ढंड भोगने के लिये ये जीते हीं तब  
तक का लिये पेट तो नहीं मानता । दुःख बाकर भाँता भा तो  
नहीं जाता । क्या भारतवर्ष में ऐसा कोई भी मार्हि का लाल  
नहीं जो इनके लिये खाने पहनने और मरहम पट्टों का बंदोबस्त  
करके इन्हें छाया के लाने पर लगा से आलग रख सके ; साथ  
भर में यहाँ लाखों यात्रियों का आगमन होता है, उनमें हजारों  
ही धनवान् आपे हैं परंतु कोई इनकी सुध लेनेवाला नहीं । सूर्यो-  
दय से सूर्योरत तक यहाँ, सबके दोनों किनारों पर कलारबध  
पड़े रहना, यात्रियों के दिए हुए चर्नों के लान दाने को इकट्ठा  
करके पेट भर देना और चाहे वर्षा हो, चाहे सर्दी हो और जाहे  
गर्मी हो यहाँ, पंडों की छाया में निवास । इस से बड़कार यातना  
क्या होगी ? धोर कष्ट है । बेदना दो परिसीभा है ॥

इस तरह कह रहकर आँसू बहाते बहाने पंछितायिन  
के इशारे से पंछितजी ने बाजार से पूँछियाँ मँगवाईं और  
जितने कोढ़ी वहाँ थे उन्हे बिलाकर लब वह आरे बढ़े । ऐसे  
केवल पूँछियाँ बाटकर ही ये चल दिए हों सो नहीं । दंपती  
की घृणा उस समय बिलकुल काफ़ूर हो गई । यात्रियों ने  
बहुतेरा उन्हें समझाया, रोका, यहाँ तक कह दिया कि

यह रोग उड़कर लग जाता है किंतु उन्होंने कुछ पर्वाह नहीं की। दोस्रों के दोस्रों ने उनमें से जिनकी शक्ति नहीं थी, जो अस्पत्य थे अथवा जो अपने हाथ से ग्रापना काम नहीं कर सकते थे उनका पीप में सरे हुए बाबू अपने हाथों से धोए; बाजार से नया कपड़ा खँगाकर उनके पट्टियाँ चौंधीं और तथ माझे छेष बुँद में जाकर म्मान किया। वहाँ के कार्य से निवृत होकर जब इन्होंने श्री जगदीश के अंदर गे प्रवेश किया तब वहाँ में ठीक 'टच टच' लाइ नज़े थे।

दर्शन खुलने ही बाले थे। रथयात्रा का असव ज हाने पर भी, और किसी तरह का च्यवहार ज हाने पर भी यात्रियों की भीड़ के मारे, उड़िया लोगों के छट्टे के लां लोहनिया छिली जाती थी, पैर कुचले जाते थे, और पुरी जिवासी उड़ियों के शरीरों में की तेल तथा गछली की गंध के मारे सिर भिजाया जाता था। जिनका द्विमाण गुलाब, जुही, मोगरा, चमेली के इतरों से सदा बमा रहता हो उनकी तो कथा ही क्या? उन्हें तो यायद इसी समय चक्कर आकर बमत हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं किंतु जो साधारण स्थित के अनुप्रय हैं उनका भी जी बचड़ाता था। खैर! तो लोग अकुलाते हैं तो अकुलाने दीजिए किंतु इस गमय दर्शनों की आशा में यबके सब मग्न हो रहे हैं। राजा रंक का, अमीर गरीब का, भले बुरे का और खो पुरुष का जो भिज भाव था वह यहाँ बिलकुल नहीं। यदि ब्राह्मण हैं तो क्या,

और शूद्र है तो क्या ? भगवान् के लिये सब समान हैं । अब जवनिका उठा दी गई । टेरा खुल गया । दर्शक भगवान् के दर्शनों का आनंद लूटने लगे किंतु जैसे जलाशय के ज्याँ ज्याँ निकल पहुँचते जाते हैं त्याँ ही त्याँ लृपा बढ़ती है वैसे ही अब मंदिर में प्रवेश दरकं निकट से श्री जगदीश की आँकी करने की इच्छा बढ़ी । अवश्य ही भीता जाने के लिये किसी की रोक ठोक नहीं किंतु इतनी भीड़ में घुसकर बैंधेर मार्ग से जाना और फिर सही सलामत लौट आना हीसी खेल नहीं । किंतु आज लब ही चाहते हैं कि भीड़ के सिल-सिले को छोड़-कर बीच के मार्ग से हम पहले ही भीतर चले जायें । वस इस तरह “हम पहले !” की होड़ाहोड़ी है । पंडों के सिपाहियों का हाथ गर्म हो रहा है, दर्शक उनकी घुड़कियाँ जाते हैं, वेत की मार खाते हैं, किंतु फिर भी कुछ दे दिलाकर औरों से पहले भीतर पहुँचते हैं । खैर ! इतना ही बहुत है । जब हिंदुओं के सब ही मंदिरों में सब ही तीर्थों में इन बातों का अनुभव होता है, जब इस उपन्यास में पहले भी कई बार इस विषय में लिखा जा चुका है तब पिस्त को पीसने से क्या लाभ ?

अस्तु, पंडित पार्टी भी किसी न किसी प्रकार से मंदिर में जा पहुँची । वहाँ जाकर भगवान् जगदीश के समक्ष, उन परमात्मा के समक्ष जो सृष्टि उत्पन्न करने के समय ब्रह्मा, पालन करने में विष्णु और संहार करने के लिये शिव स्वरूप हैं दोनों हाथ जोड़कर, उनके अंग प्रत्यंग को निरखकर

उनके चरणों में आपसे चर्मचक्षुओं के साथ साथ हृदय के नेत्रों  
को गड़ाते हुए पंदित प्रियानाथ जी आदि गाने लगे—

‘देश सोरठ—हरि हैं बड़ी वेर को ठाड़ो ॥ टेक ॥

जैसे और पतित तुम तारे तिन हीं में लिख काढ़ो ॥

जुग जुग विगद यही चल आयो टेर करत होताते ।

मरियतलाज पंच पतितन में हैं घट कहो कहाँते ? ॥

कै अब हार मान कर बैठो कै कर विगद सही ।

सूर पतित जो झूठ कहत है देखो खाल वही ॥ १ ॥

धनाश्री—नाथ मोहि अब की वेर उआरो ॥ टेक ॥

तुम नाशन के नाथ स्वामी दाता नाम तिहारो ।

कर्महीन जन्स को अंधों मोते कौन नकारो ॥

तीन लोक के तुम प्रतिपालक मैं तो दास तिहारो ।

तारी जात कुजात प्रभूजी मोपर किरपा धारो ॥

पतितन में एक नायक कहिए नीचन में मरदारो ।

कोटि पापो इक पासँग मेरे अजामील को न विचारो ॥

नाळ्यो धर्म नाम सुन मेरो नरक दियो हठ तारो ।

मोक्षो ठौर नहीं अब कोऊ अपनो विगद सँभारो ॥

जुद्र पतित तुम तारे रमापति अब न करो जिय गारो ।

सूरदास साँचो तब मानै जो होय मम निस्तारो ॥ २ ॥

भरण आए की लाज उर धरिए ॥ टेक ॥

मध्यो नहीं धर्म शील शुचि तप व्रत कछू कहा मुख ले बिनै

तुम्हें करिए ॥

कठू चाहौं कहौं साचि मन में रहौं कर्म अपने जानि त्रास आवै ।  
यहै निज सार अधार में अहै पतित पावन विरद बेद गावै ॥  
जन्म ते एकलक लागि आशा रही विधय विष खात नहिं  
दृष्टि मानी ।

जो क्लिया छरद करि सकल संतन तजी तासु मति मूढ रस  
प्राप्ति ठानी ॥  
पाप मारग जिते तेव कीन्हें तिते बच्यो नहिं काई जहै  
सुरति मेरी ।

सूर अवगुण भरयो आइ द्वारे परयो तकी गोपाल अब  
शरण तेरी ॥ ३ ॥

सारंग—तुम हरि साँकरे के साथी ॥ टेक ॥

सुनत पुकार परम आतुर है दौरि छुड़ायो हाथी ॥  
गर्भ परीक्षित रक्षा कीनी बेद उपनिषद माखी ।  
बसन बढ़ाय ढुपदतनया के संभा माँझ पत राखी ॥  
राज रवनि गाई व्याकुल है दै सुत को धीरक ।  
मागध हति राजा सब द्वारे ऐसे प्रभु पर पीरक ॥  
कपट स्वरूप धरयो जब कोकिल नृप प्रतीति करि मानी ।  
कठिन परी तवहीं तुम प्रकट रिपु हति सब सुखदानी ॥  
ऐस कहौं कहौं लों गुण गण लिखत अंत नहिं पढ़प ।  
कृपासिधु उनहीं के लेखं मम लज्जा निर्वहिण ॥  
सूर तुम्हारी ऐसी निवही संकट के तुम साथी ।  
ज्यों जानो लों करो दीन की बात सकल तुम हाथी ॥ ४ ॥

धनाश्री—आजु हाँ एक एक करि टरिहाँ ॥ टेक ॥

कै हमही कै तुमही माधव अपन भरोसे लरिहाँ ॥

हाँ तो पतित अहाँ पंडिन को पतितै है निस्तरिहाँ ।

अबहाँ उधर नचन चाहत हाँ तुम्हें बिरद बिनु करिहाँ ॥

कत अपनी परतीत नभावत मैं पाया हरि हीरा ।

सुर पतित तभी लै उठिहाँ जव हँसि देहो थीरा ॥५॥

इस बार सूरदास जी के पद गंडित, पंडितायिन, गौड़-  
बोले तीनों ने मिलकर गाए । साथ में राग भरने के लिये  
बूढ़ा, बुढ़िया भी मिल गए और जब दाल सुर अच्छा जप  
गया तो एकदम दर्शनियों में सबाटा छा गया । भव की  
आँखें हरि चरणों में और कान इनके गान में । यों गायन  
समाप्त होने पर “धन्य ! धन्य !” और “शाबाश ! शाबाश !”  
की आवाज और कभी “खूब अमृत बरसाया !” का शब्द  
भीड़ में से बारंबार उठकर मंदिर में गूँजता हुआ बाहर तक  
प्रतिध्वनित होने लगा कितु भेषकर सिर झुका लेने के सिवाय  
पंडित जी ने कुछ उत्तर न दिया । वह फिर समय पाकर  
भगवान् जगत् के नाथ की यो स्तुति करने लगे—

“ हे अशरण शरण, इससे बढ़कर और क्या कहूँ ? जो  
कुछ मैंने अभी निवेदन किया है वह महात्मा सूरदास जी से  
उधार लेकर । उनकी सी योग्यता मुझ अकिञ्चन में कहाँ है  
जो मैं अपनी विनय आपको सुना सकूँ ? भला उनका तो  
आपसे कुछ दावा भी था । दावा था तबही वह आपके

द्वार पर अड़कर बैठ गए । जो पहल शिव भगवान्दिकों को भी दुर्लभ है वही उन्होंने पा लिया । और पाया तो भी चिरकालीन । खैर ! उनका सी दावा था और गोस्वामी तुलसीदाम जी का भी दावा था । उनका दावा था इसी लिये उन्हें बाँह पकड़कर कुएँ में गिरते गिरते बचाया, कुएँ में से क्या बचाया भवकूप में से बचा लिया और तुलसीदाम जी का दावा था इसी लिये उनकी त्रिलय पर मुरली और लकुटी त्यागकर धनुष बाण धारण किया कितु मुझ जैसा पासर किस विरते पर दावा करे । सूरदास जी ने जां कुछ कहा वह कंवल विनय के लिये, अपनी नम्रता दिखाने को कितु मैं तो मचमुच वैसा पापी हूँ, घोर पापी । मुझे उबारो तब आपकी दीनदयालुता साँची है । हे नाथ ! रक्षा करो ! इस दीन, हीन, मन्त्रिन की रक्षा करो । हे तारणतरण ! मुझे उबारो ।”

इस तरह कहते कहते पंडित जी फिर ध्यानावस्थित, फिर निश्चेष्ट, निःस्तब्ध । उनका देहाभिमान जाता रहा । आँखों में से अश्रुधारा बहने के अतिरिक्त उन्हें अभी कुछ खबर नहों कि उनके शरीर की इस समय स्थिति क्या हो रही है । इतने में दर्शकों में से न मालूम किसने, कंवल पंडित जी का चिताने के लिये अथवा स्वभाव से ही कुछ गुनगुनाया । उसने क्या गाया, सो किसी ने सुना नहीं कितु “ हैं किस गोरी का ध्यान ? कहाँ हैं भूपकिशोर ? ” कहकर पंडित जी मानो इधर उधर किसी खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ने लगे । पंडितायिन उनकी

अर्द्धांगिनी होने पर भी इसका एक बार कुछ मतलब न समझ सकीं । हाँ उसने टटोल टटालकर अंत में मतलब निकाला कि किसी ने भीड़ में से “बहुरि गौरि कर ध्यान करेह, भूप-किशोर देखि किस लेहू” यह चौपाई गाई है ।

अस्तु ! अब पंडित जी फिर बोले—“इस स्वरूप में आज न भूपकिशोर हैं और न कृष्ण बलदाऊ हैं । भगवान् के दस अवतारों में से, चौबास अवतारों में से एक का भी स्वरूप इससे नहीं भिनता । भारतवर्ष में हजारों वर्षा, लाखों मंदिर हैं । उनमें जो भगवान् की प्रतिमाएँ हैं वे अवतारों में से किसी न किसी भाव की प्रतिमूर्तियाँ हैं किंतु इसमें कौन सा भाव कहा जाय ? पुराणों में इसकी कथा चाहे जिस तरह पर हो, जो कुछ होगी “जगन्नाथ माहात्म्य” मुनने से विदित हो जायगी किंतु इस समय तो संर अंतःकरण में अचानक एक ही भाव का उदय हो रहा है । मानो बाबा मेरी ओर गुस्कुरा कर गवाही दे रहे हैं कि मेरी यह कल्पना कंवल कवि कल्पना नहीं है । हाँ ! तो मेरी समझ में जो आदा वह यही है कि गीता का उपदेश देका उसे अर्जुन के अंतःकरण पर अच्छी तरह जमाने के लिये भगवान् ने विराट् स्वरूप के दर्शन कराए, जैसे माता कौशल्या और माता यशोदा का मोह छुड़ाने के लिये भगवान् ने अपने मुख में, उदर में त्रिलोक्य को दिखला दिया उसी तरह यह सूर्ति विराट् स्वरूप का, त्रिलोकी का चित्रपट है । यदि भगवान् की कृपा से

आजुन की तरह हमें भी दिव्य दृष्टि मिल जाए तो हम देख सकते हैं कि इसमें राम हैं, कृष्ण हैं, लंसार हैं और सब कुछ है। कुछ कुछ अलग सुनें भी ऐसी ही पतीत होती है किंतु है जगदाश, आज आपकी वह सृष्टि मुख्यान् कहाँ गई ? क्या आप सचमुच इस पामरों से रुठ गए हैं ? बेरक ! आप रुठे ही से मालूम होते हैं। अपनी संतान की अनीति देखकर माता जैसे झड़ने का भाव दिखलाती है किंतु दृढ़य से नहीं, इसी तरह आप भी रुठे हैं। पापों के मागर में छूट हुए हम लोगों के नेत्र ही नहीं ! आँखों की जगह कंबल गोल गोल गढ़े हैं। यदि दिव्य चक्षु, नहीं कंबल दृढ़य चक्षु भी हम रखते हों और वे पाप विमारों से रहित हों तब हम आपकी वास्तविक छवि का अवलोकन कर सकते हैं। जब तक प्रारब्ध के फल से दिव्य चक्षु न मिलें, हिए की आँखें न खुल जायें तब तक चर्म चक्षु ही गनीमत है। हमारे कितने ही भाइयों के तो यहाँ आकर वे भी बंद हो जाते हैं। मंदिर के भीतर जाने पर भी बाबा के दर्शन नहीं होते ।”

“हाँ हाँ ! ऐसा ही कहते हैं ? कहते क्या हैं ? आँखों से देख लो ! वै परंतु महाराज मूर्तियाँ तीनों ही विलक्षण हैं, अपतिम हैं। और और प्रतिमाओं में उनकी मधुरता, उनकी सृष्टि मुख्यान्, उनका अलौकिक शृंगार देखकर अंतः-करण द्रवित होता है इसलिये लोग कहते हैं कि उनका सौंदर्य इसका कारण है किंतु जब यहाँ सुंदरता का नाम नहीं, कुरु-

पता, राम राम ! भगवान् के लियं ऐसा कहकर पाप-पंक में निमग्न कौन हो ? फिर भी दर्शन करके मन पर एक असाधारण प्रभाव पड़ता है । वह वाणी के अगोचर है । भयानक मूर्ति का देखकर आदमी डरा करता है । डर के मारे आँखें बंद कर लेता है किंतु इन पर से आँखें हटती ही नहीं । इन चरणों को छाड़ने को जी नहीं चाहता । परमेश्वर ऐसा ही करे । यदि ऐसा हां तो परम सौभग्य समझो । इस जन्म में तो हमने ऐसा पुण्य ही क्या किया है जो ऐसा हो । ईश्वर की इच्छा !”

“वास्तव में यथार्थ है । परंतु क्यों महाराज, आप समझे ? ये तीनों विश्रह किन किन के हैं ? एक जगन्नाथ, दूसरे बलभद्र और भृद्य में सुभद्रा । सुभद्रा कौन ? क्या श्रीकृष्णचंद्र की भगिनी अर्जुन की कुलवधू ? नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता ! वह एक सुग्रहिणी होकर पति चरणों को क्यों छाड़ती ? यह सुभद्रा नहीं भद्रा है ! लोगों ने भ्रम से कहना आँखंभ कर दिया है । परंपरा से चाहे ऐसा ही कहते चले आवें किंतु यह श्रीकृष्णचंद्र की आठ पटरानियों में से एक है । पटरानियों में से हैं तब ही भगवान् के वागींग में स्थान लिया है । अच्छा कोई हों किंतु मेरी समझ में भगवान् जगदीश ब्रह्म, भगवान् बलभद्र जीव और भगवती सु-भद्रा माया हैं ।”

इस तरह की बातें करते करते पंडित जी और गौद्योले भीड़ से बचाने के लियं पंडितायिन को बीच में लिए हुए बूढ़ा, बुढ़िया और भोला, गोपीवल्लभ को साथ लेकर भग-

वान् की प्रह्लिदा करते हुए मंदिर से बाहर निकले । परंतु आहं ! मंदिर का अधिकार ? परिकमा की सकरी गलों की कमामर्सा ? कुछ पूछा ही मत । जहाँ वह दुपहरी में दीपक के बिना काम ही न चले । भगवान् के चरणों से पहुँचते के अनेतर मानो यह अंतिम कलोटी है अथवा सोने के तार की अधिक लंबा और अधिक बारीक बनाने के लिये सुनार की जंती की तरह प्रेम की जंती है ।

कुछ भी हो, अब पंडित पार्टी भूख के बारे व्याकुल है । जरा उसे डेरे पर पहुँचकर कुछ विश्राम लै लेने दीजिए । प्रसाद पा लेने दीजिए । गोपीवद्धभ वास्तव में भूख के भारे रो रहा है, अपनी आँखों से माती से आँसू गिरा रहा है । छोटा बड़ा कोई हो चेहरे सा सब ही के खिलियाने से हो रहे हैं । पंडित जी का भक्ति से पेट भर गया सा क्या हुआ और प्रियंवदा का चाँद भा मुखड़ा चाहे अपने शावों को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों न कर किंतु उसके मुख कमल की कुम्हलाहट दैड़ दैड़कर जला रही है कि पति परमात्मा के महाप्रसाद पा लेने के अनेतर उनकी जूँठन गुझे भी गिले । अस्तु ! पार्टी जय मकान पर पहुँच गई तब थोड़ी देर सुस्ताकर पंडित जी और गोड़बोले ने स्नान किया । पीतांबर पहने और यों तैयार होकर अपने खर्च के बाह्य मंदिर से जाकर प्रसाद ले आए और तब सबने भक्तिपूर्वक, वृत्तिपूर्वक भोजन किया ।

---

## प्रकरण—४८

**श्री जगदीश का प्रसाद और अश्लील मूर्तियाँ**

**“परंतु क्यों जी प्रसाद की तो वहाँ बहुत ही अवज्ञा है !**

राम राम ! शिव शिव ! ऐसी अवज्ञा ? भगवान् जगदीश का जो महाप्रसाद देवताओं को भी दुर्लभ है, जिसके लिये बड़े बड़े शृणि मुनि तरसते हैं, जिसका एक कलका भी भवसागर पार उतरने के लिये संतु है और जिसका माहात्म्य वर्णन करने, जिसका गुण गान करने में अपने हस्तारविंश पर रखकर महाप्रभु बल्लभाचार्यजी ने एकादशी के दिन दिन रात बिता दिए थे उसकी इतनी अवज्ञा ? उसका इतना अपमान ! उसका इतना अनाचार ! वोर अनाचार हैं। वस हद हो गई !”

“हाँ सत्य है ! यथार्थ है। वास्तव में कंबल याद करने ही से रोमांच होते हैं। ज उमकी महिमा मूर्तिसती होकर दर्शन देती है तब आनंद से और जब उमका अनादर सामने आता है तब दुःख से हृदय दहल उठता है, रोमांच हो उठते हैं। हम लोग यदि मंदिर में जाकर ही ले आए, ऐसे लाकर ही हमने अपना भन समझा लिया तो क्या हुआ ? यदि मंदिर में जाओ तो मंदिर में और बाहर फिरो तो बाहर, जहाँ जाओ वहाँ महाप्रसाद की गंध, जहाँ देखो वहाँ महाप्रसाद बिखरा हुआ पैरों से रौदा जा रहा है। उसे तैयार करनेवाले

पाचक ये ही मछली खानेवाले त्राक्षण, उन्हें लाकर यात्रियों के पास पहुँचानेवाले शृङ्‌। वास्तव में बाबा के निकट त्राक्षण और शृङ्‌ एक हैं, समान हैं, किंतु इसका क्या यह मतलब है कि मार्ग में लपक लपककर उसमें से खाते जाते हैं, खाते खाते जो कुछ बचता है उसे उसी में डाल दिया जाता है, जो कुछ बचा बचाया हो। उसे बटोरकर दूसरं यात्रियों के पास पहुँचा दिया जाता है। घोर अर्थ है। अमङ्ग वेदना है। न शास्त्र-विहित आचार का कहीं पता है और न महाप्रसाद जैसी आदरणीय वस्तु का आदर।'

"बैशक, आपका कहना ठीक है। वर्ष एक ही बार से मन मर गया। बहुत हुआ। गंगा नहाए। अब अपने हाथ से बनाना खाना और बाबा के दर्शन करना!"

इस प्रकार का मनसूबा करके, विचार स्थिर कर लेने पर भी चित्त कंगाचैन नहीं हुआ तब अपने मन की झाँति निवृत्त करने के लिये—“इधर जाओ तो धाढ़ और उधर गिरो तो कराड़” को याद करके पछताते हुए दो यात्री पंडितजी और वास आए। उन्होंने आकर, दोनों के मन के भाव उनको समझाने के अनंतर हाथ जोड़कर, निदा के लिये नहाँ किंतु भक्तिपूर्वक पूछा—

आज ही के दिन में आपकी चर्या देखकर हम लोगों को निश्चय हो गया है कि आप परमेश्वर के भक्त हैं, पंडित हैं और लोकाचार को भली भाँति जाननेवाले हैं। महाराज, बलभसंप्रदाय के मंदिरों में, मंदिर के मुखिया भीतरियों को प्रसाद

( १७ )

बेचते देखकर ही हमारा जी जलता था । भगवान् का महाप्रसाद जैसा सुर-दुर्लभ पदार्थ, जिसके मूल्य के आगे त्रिलोकी का राज्य भी तुच्छ है वह दूकाने लगाकर बेचा जावे ! बड़े अर्थ की बात है किंतु यहाँ आकर हम उसे भी गनीभत समझने लगे । यहाँ तो अवज्ञा की, अनाचार की हृद हो गई ।

“हाँ ! आप लोग ठीक कहते हैं । मन से ऐसे ही भाव उत्पन्न होते हैं । ‘श्रीजगदीश-माहात्म्य’ मैंने सुना । यहाँ के पंडितों से भेरा वादविवाद भी हुआ । शास्त्रों के मत से यह अवश्य पाना जाता है कि भगवान् के महाप्रसाद का अनादर न करना चाहिए । उसमें छुआलूत का विवार नहीं । घृणा उत्पन्न होना भी पाप है किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसकी पवित्रता भी खो दें । उसकी महिमा का सर्वनाश हो जाय और वह पैरों से छुचला जाय ।”

“हाँ भहाराज ! यहाँ हमारा कथन है । परंतु यह तो बताजाइए कि किस प्रकार का प्रबंध होने से ये दोष, ये कलंक भिट सकते हैं ? और हमें कर्तव्य क्या है ?”

“कलंक मेंदनेवाला कंवल जगदीश है । वह चाहे तो एक चण्डभर में लोगों की गति भति सुधर सकती है । जाति पांति के गोद का, छुआलूत के भिन्न भाव का अभाव भी यहाँ इस कारण से है और कंवल उनके लिये है जो संसार के यावत् विकारों से रक्षित हैं, जिन्होंने अपनी इंद्रियों को जीत-कर, दुनिया के यावत् जातेदारों से नाता तोड़कर अपने अंतः-

करण को ईश चरणों में चिपटा दिया है। ऐसा करनेवाले शूद्र क्या अतिशूद्र तक परमपद प्राप्त करने हैं। शवरी, बालमीकि, रैषास और धना कस्ताई आदि अनेक भक्त इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ऐसे भगवदीय जनों से स्पर्शस्पर्श की, जातिपाँति की वृणा न हो। यही यहाँ के महाप्रसाद का माहात्म्य है। ऐसे भक्त वास्तव में हमारे धंदनीय हैं। ये शूद्र, अतिशूद्र होने पर भी हमारे पूजनीय हैं। हम उनकी यदि जूठन भी खावें तो हमारा सौभाग्य किंतु भक्ति का हमारे हृदय में लेश नहीं, भगवान् के दर्शन करते समय भी उनके चरणों में लौ लगाने के बदले या तो हम रुपयों की बैली को याद करते हैं अथवा पर खो के चरणों की महावर। मंदिर में आकर भगवान् की मूर्ति को निरखने के बदले जब शुभतियों के हावभाव पर हमारी नजर पहुँचकर उनका सतीत्व विगड़ने की ओर हमारा मन दौड़ा जाता है तब कहापि हम इस बात के अधिकारी नहीं कि हमारा स्पर्श किया हुआ भोजन करके काई महात्मा हमार पापों के कीटाणुओं (जगों) का अपने मन में प्रवेश करे। इस कारण यदि उपाय हो सके तो ऐसा ही होना चाहिए जिससे महाप्रसाद की महिमा भी ज्यों की त्यों रहे, नहीं वर्डमान हो और हमारा आचार भी रानित रहे।”

“हाँ महाराज ! यही हम भी चाहते हैं, परंतु इसका प्रकार क्या है ?”

“मेरी लघुमति के अनुसार होना इस तरह चाहिए कि

( १६ )

मंदिर में प्रसाद बनानेवाले जो ब्राह्मण पाचक हैं वे चाहे उड़िया ब्राह्मण ही हों तो कुछ हानि नहीं । वे भी पंच गौड़ों में से उत्कल जाति के हैं । यहाँ गौड़ द्राविड़ों का भेद रखने की आवश्यकता नहीं ।”

“परंतु महाराज, तब क्या नागर, गुजराती, गौड़, कनौ-जिये सब एक हो जाय ?”

“शास्त्र की मर्यादा से ब्राह्मण ब्राह्मण सब एक हैं । कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है कि एक प्रकार का ब्राह्मण दूसरे का छुआ न स्थाय । बात यह है कि आचार, देश-भेद और विचार-भेद से भिन्न भिन्न हो जाया करते हैं । जहाँ सर्दी अधिक पड़ती है वहाँ एक बार भी खान कठिन है और जहाँ गर्मी अधिक हो वहाँ तीन बार भी थोड़ा है । फिर “धृतपक्ष पयःपक्षं पक्षं केवल विहिना” —ऐसे वाक्यों का अर्थ भी लोगों ने अलग अलग लगा दिया है । कोई पूरी को केवल धृतपक्षं मानकर उसका शूद्र से छू जाना भी बुरा नहीं समझते और कोई उसमें जल का अंश मानकर उसे कच्ची समझते हैं । इन कारणों से जहाँ आचार-भेद है वहाँ खान-पान में भी भेद रहेगा । किंतु इस भगड़े को अभी जाने दीजिए । विषयांतर हो जाने से असली बात हाथ से निकली जाती है ।”

“अच्छा तो फर्माइए न कि क्या इन मछली खानेवाले उड़ियों का बनाया महाप्रसाद ब्राह्म है ?”

“मैं मांस भक्षण को बहुत बुरा समझता हूँ । चाहे कैसा

भी विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मण हो किंतु मांस मछली खाने-वाले से मुझे खभाव से दृश्या है किंतु मैंने सुना है कि जो महाप्रसाद बनाने का काम करनेवाले हैं उन्हें तीन दिन पहले से मछली का त्याग करना पड़ता है। मेरी समझ में पाचकों का वेतन बढ़ाकर उनके कुटुंब में धर्मशिक्षा का प्रचार करके ऐसे पाचकों को नियत करना चाहिए जो इस कुकर्म से सदा ही बचे रहना अपना कर्तव्य समझें।”

“हाँ ठीक है, परंतु फिर ?”

“जैसे पाचक सदाचारी हों वैसे ही भगवान् के भोग लगाने-वाले भी हों। उनका स्पर्श किया हुआ नैवेद्य हम लोग खान करके, अपने अपने आचार के अनुसार पवित्र होकर यदि भोजन करें तो इसमें प्रसाद का आदर बढ़े और आचार की रक्षा भी हो।”

“तब इस तरह से हम उस महाप्रसाद को अपने घर लं आवें तो इसमें कुछ हानि नहीं ? रस्ते चला हुआ ?”

“नहीं ! कुछ हानि नहीं। हम अपने आचार के अनुसार लाकर पा सकते हैं। यह हमारे हाथ में है कि मार्ग में किसी से स्पर्श न होने दें।”

“और हमारे खाने के अनेक पत्तल में उच्छिष्ट रह जाय तो ?”

“हम उच्छिष्ट रहने ही क्यों दें ? और रह जाय तो उसके लिये अत्यंज हैं ! हमें फेंक न देना चाहिए।”

“अच्छा महाराज ! ऐसा ही करेंगे। परंतु एक बात

और भी कह दीजिए । क्या इस महाप्रसाद को हम स्वदेश भी ले जा सकते हैं ? ”

“नहीं ! माहात्म्य इस पुरी का है, केवल बाबा के चरणों में है । उसके चरणारविद्धां से जितने दूर उतने ही दूर ! ”

“अच्छा महाराज, आपने हमारा संदेह मिटाकर बढ़ा उपकार किया । आपके दर्शनों से आज हम कृतकृत्य हुए । ” कहते हुए जब वे दोनों बाबी उनके पास से उठकर अपनी कोठरी में अपने अपने विस्तरां पर जा सोए तब प्रियंवदा ने अपने प्राणनाथ के चरण चापने के लिये, उनकी दिन भर की श्रकान्त दूर करके उन्हें सुख से सुलाने के लिये अपने कोमल कोमल हाथ बढ़ाए । इस पर पंडित जी बोले—“हैं हैं ! यह क्या करती है ? आज तू भी बहुत थक गई है । सो जा ! सो जा ! एक दिन न सही ! क्या यह भी कोई नित्य नियम है ? देवपूजा है ? यदि पुरी में आकर न किया तो न सही । ”

“हाँ मेरे लिये तो नित्य नियम ही है । वास्तव में देवपूजा ही है । न किया सो न कैसे किया ? ” कहकर प्रियंवदा पति के चरण चापने लगी । “क्यों जी नींद तो नहीं आती है ? आपकी निद्रा में तो विद्यु नहीं पड़ेगा ? आप आज बहुत थक गए हैं यदि नींद आती हो तो वैसा कह दो ! ” कहकर उसने कई सवाल पर सवाल कर डाले । उन्होंने उत्तर दिया—

“नहीं ! अभी नहीं आती ! नेत्रों में निद्रा का लेश भी नहीं है । आज शायद कुछ देर से आवे और अभी अति काल भी नहीं हुआ । ”

“अतिक्राल नहीं हुआ तो एक बात पूछना चाहती हूँ। मेरे मन में बड़ा संदेह है। जब से मैंने देखा है मैं लाज के मारे गयी जाती हूँ। भगवान् के मंदिर में ऐसा अनर्थ? ऐसी निर्लज्जता? ऐसी अश्लीलता? भला आपने महाप्रसाद की उन लोगों को ड्यार्ल्या सुनाकर उसके विषय में तो मेरा संदेह निवृत्त कर दिया। यह सत्य ही है कि यदि कदाचारी के लिये जाति पाँति का भेद नहीं है तो न रहे किंतु सदाचारी कदाचारी क्यों एक हो जाय?!”

“भगवान् के दर्शन करने के अनन्तर जब कदाचारी भी सदाचारी हो जाता है तब कदाचारी कौन रहा? और कदाचारी को भगवान् जगदीश दर्शन भी तो नहीं देते।”

“परंतु हम इस बात का निश्चय भी तो नहीं कर सकते कि कौन कदाचारी है।”

“इसीलिये मैंने उन यात्रियों को ऐसी व्यवस्था दी है। इसीलिये हमारे लिये ऐसा कर्तव्य है।”

“हाँ परंतु असली बात को न छोड़िए! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।”

“तेरे प्रश्न का उत्तर बड़ा गहन है। ऐसा संदेह केवल तुझे ही हुआ हो सो नहीं। जो यहाँ आते हैं उन सबको थोड़ा बहुत संदेह अवश्य होता है। मंदिर के शिखर के नीचे मनुष्यों को अच्छी तरह दिखलाई दे, ऐसे स्थान पर छोटी पुरुष के संयोग की मूर्तियाँ देखकर लोगों को संदेह हो तो इसमें

उनका दोष भी नहीं है। दर्शकों के मन का भाव भी बिगड़े तो बिगड़ सकता है। मैंने इस विषय में पुरी का माहात्म्य देखा तो उसमें कहाँ इस बात का उल्लेख नहीं। यहाँ के पंडितों से पूछा तो केवल एक कं सिवाय सबने योंही आंय बाँय शाँय उत्तर दिया। कोई कहते हैं कि यह मंदिर बौद्धों का बनाया हुआ है परंतु अश्लील मूर्तियों की उनमें बिलकुल चाल नहीं। जैन मंदिरों में अवश्य नग्न प्रतिमाओं का पूजन होता है किंतु वे मूर्तियाँ महात्माओं की हैं। उनसे हमारा हजार मतभेद हो किंतु जिन महात्माओं के लिये खो पुरुप समाच, पथर और सोना एक सा उनकी नग्न मूर्तियों से मन का भाव नहीं बिगड़ सकता। महाप्रसाद के विषय में मैंने जिन लोगों से छुआछूत न भाजने की राय दी है वे ऐसी ही स्थिति के थे। हमारे शालों में इसी लिये भगवद्गतों को बड़े बड़े विद्वानों से, राजा महाराजाओं से ऊँचा आसन दिया है। लोग भले ही ऐसी अटकल लगाया करें किंतु भेरी समझ में यदि यह मंदिर सतयुग का बना नहीं तो हजार वर्ष से कभ का भी नहीं है फिर उस समय ऐसी मूर्तियाँ बनाने की क्यों आवश्यकता हुई? मेरे इस प्रश्न का उत्तर जो एक पंडित ने दिया उसका भाव यही है कि मंदिर शिल्प शाल के नियमों के अनुसार बनाया गया है। उन्होंने ताड़ पत्र पर लोहे की लेखनी से लिख द्या एक प्राचीन ग्रन्थ में लिखा हुआ बतला दिया कि ऐसी मूर्तियों की बनावट से मंदिर की वज्रपातादि

उपद्रवों से रक्खा होती है। तब मेरी समझ में आया कि ऐसे सुंदर, गगनस्पर्शी, विशाल भवित्व की शोभा को लिये ये मूर्तियाँ हिठाना हैं। हिठाने से बालक की सुंदरता धटने के बदले जैसे बहसी है वैसे ही इन मूर्तियों को देखकर मन का भाव विगड़ने की खान में सुधरना चाहिए। मयुरा में अगुला पार एक शिवमूर्ति के दर्शन करके मनुष्य की जैसे शिक्षा मिलती है वैसे ही किसी प्रकार की शिक्षा इन मूर्तियों का देखकर प्रहृण करना चाहिए । ”

“हैं मयुरा की कैसी मूर्ति ? मैंने दर्शन नहीं किए । ”

“उस ममय गौड़नाले साथ थे इतालथे गौने तुम्हें भवित्व के बाहर ही ठहरा किया था। उस शंकरमूर्ति के एक हाथ में जिहा है और हूसरे में.....। उन प्रतिमा से यह शिक्षा मिलती है कि ये दो इंडियाँ ही मनुष्य को धर्म से गिरा देनेवाली हैं इसलिये जो भवतागर पार उत्तरना चाहे वह इन पर काबू रखे और इस तरह काबू रखे। इन मूर्तियों से उपदेश मिलता है कि भगवान् के भवित्व में आकर भी जित नहनारी के मन में इस प्रकार के काम विकार उत्पन्न होंगे उनकी कहीं गति नहीं है। वे यहाँ आए हैं स्वर्गपासि को लिये किन्तु उनके लिये कुंभीपाल तैयार है। जैसे ऊँड़ खाबड़ भूमि पर चलनवाला मनुष्य प्रभाद्वश होकर जब ठोकर खाने की भूल करता है तब ही अनुभवी शिष्ट जनों के मुख से अनायास “खबरदार ! सँभलकर !!” निकल जाता है, वैसे ही ये प्रति-

माएँ हमें उपदेश दे रही हैं—“खबरदार ! इस स्वर्ग-सुख के भरोसे देवमंदिर में आकर यदि भ्रम-वश भी तुम्हारे मन में हमारा सा, किंचित् भी काम विकार उत्पन्न हुआ तो तुम ऐसे गिरोगे कि फिर कहाँ ठिकाना नहीं । स्वर्ग में निवास करनेवाले इंद्रादि देवताओं को, नारदादि मूर्तियों को भी काम-वश गिरना पड़ा है ।”

“बाबा की मूर्ति जैसे विलक्षण है वैसे उनकी सब बातें विचित्र हैं । दुनिया भर की प्रतिमाओं में सौम्यता, सुंदरता है और यहाँ भीषणता । हिंदू समाज में जहाँ देखो तहाँ आचार की प्रधानता और यहाँ अनाचार की पराकाष्ठा । दुनिया में अश्लील मूर्तियाँ निदनीय और यहाँ मुलाखुली दिखलाई जा रही हैं ।”

“इसका प्रयोजन यही है कि ये बातें संसारियों के लिये हैं और यहाँ आकार भगवच्चरणों में जिनका अंतःकरण सच-मुच लिपट जाय वे द्विधाने, हर्ष-शोक से, मानापमान से, अपने पराए से, सब बातों से अलग हो जाते हैं । हो जाने में ही सार्थकता है । उनके लिये जो कुछ है वह केवल भगवान् के पादपद्मों में अचल, अनल, अव्यभिचारिणी भक्ति है ।”

इस प्रकार से बातें करते करते पंछित जी को जब निद्रा आने लगी तब प्रियंवदा ने मौन धारण कर लिया । पैर दब-बाते दबवाते जब वह सो गये तब वह भी सो गई । यों इन लोगों को विश्राम मिला ।

---

## प्रकरण—४ हे

### समुद्र स्नान की छटा

आज इन लोगों को पुरी में आए ठीक दस दिन हो गए। शरीर कृत्य, स्नान संध्यादि और खाने सोने के सिवाय इनका सारा भूमय जगर्णाश के दर्शनों की में ठगतील होता है। ये लोग दिन रात भक्तिरसामृत का पान करते रहे हैं किंतु अघात नहीं। इनकी इच्छा नहीं होती कि श्री चरणों को छोड़ कर घर का नाम ले। इन्होंने यहाँ आकर पुरी के यावत् तीर्थों का स्नान कर लिया, समस्त मंदिरों के दर्शन कर लियं और हमारी इस पंडित पार्टी ने “श्रीजगदीश-माहात्म्य” भी चित्त की एकाग्रता के साथ सुना। माहात्म्य श्रवण करने में इस पार्टी के अतिरिक्त वे दो यात्री और भी संयुक्त हो गए थे। पंडित जी और गौड़बोले विद्वान् थे। “घृताधारे पात्रं वा पात्राधारे घृतं”, करनेवाले शुष्क नैयायिक नहीं, बेदांत की फक्तिककाएँ रट रटकर माथा खाली कर देनेवाले और संसार को तुच्छ समझकर अकर्मण्य हो जाने वाले वेदांती नहीं, साहित्य शास्त्र का मथनकर बाल की खाल निकालने के साथ केवल प्यारी के, नायिका के चरणों में लोटनेवाले रसिक बनकर कुएँ के मेंढक बननेवाले साहित्याचार्य नहीं, अधिनी, भरणी और कृत्तिका तथा मीन, मेष,

वृप को अङ्गुलियों की पारों पर योँही अटरम सटरम गिनकर यजमान की प्रसन्नता के लिये मिथ्या मुहूर्त वतानेवाले ज्योतिषी नहीं और प्रश्नकर्ता की इच्छा के अनुसार हाँ में हाँ मिलाकर कभी स्याह की सफेद और कभी सफेद की स्याह व्यवस्था देकर व्यवस्था की मिट्टी खराब करनेवाले धर्मशास्त्री नहीं और सबसे बढ़कर यह कि व्याकरण के बल से वेद मंत्रों का अर्थ बदलकर, उनमें जो अंश अपनी राच के प्रतिकूल हो उसे चेपक बतला कर बेदों में रेत और तारों का सबज बाग दिखलानेवाले आजकल की नई रोशनी के पंडित नहीं । ये लोग ऐसे पंडितों के कायों पर वृष्णा करते थे और इनकी दुर्दशा देख देखकर दुःखित भी कम नहीं होते थे । इसमें संदेह नहीं कि पंडित जी की ओड़ी और बहुत गति सब शास्त्रों में थी और जितना उन्होंने पढ़ा, जितना उन्होंने भनन किया वह सार्थक था । कैबल इतना ही क्यों ? वह अङ्ग-रेजी के अच्छे विद्वान् थे और भारतवर्ष की प्रचलित प्रायः सभस्त प्रांतीय भाषाओं का भी ज्ञान उन्हें कम नहीं था ।

बस इनको ऐसा विद्वान्, ऐसा गुणवान् देखकर उन दोनों यात्रियों ने समझ लिया कि जहाँ तक वन सके इनसे पूछ पूछकर अपने संदेहों को निवृत्त कर लेना चाहिए । इसी उद्देश्य से जब तक पंडित जी पुरी में रहे उन्होंने इनका पिंड न छोड़ा । उन्होंने समय समय पर सवाल पर सवाल पूछे और जो पूछा उसका संतोषजनक उत्तर पाया । उन यात्रियों

का नाभ हरिभक्त और ज्ञानीराम था । दोनों ही राजपूताने में सारबाड़ के रहनेवाले वैश्य थे । अन्यान्य प्रश्नों के साथ उनका एक प्रश्न ऐसा था जिसका संचेप से यहाँ उल्लेख कर देना चाहिए । “श्रीजगदाश-माहात्म्य” सुनकर उन्होंने पंडित जी से पूछा—

“महाराज, पुराणों में ऐसी असंभव बातें क्यों भर दी गई हैं जिन्हें सुनकर शिक्षित समुदाय उन्हें कपोतकल्पना समझ रहे हैं ?”

“नहीं ! कपोतकल्पना बिलकुल नहीं ! उनका अच्छार अच्छर सत्य है । जो बात अपनी समझ में न आये उसे मिथ्या बतला देना सूखेता है, सूर्य पर धूल केकला है । पुण्यों में दो प्रकार की कथाएँ हैं । जो लोगों को असंभव मालूम होती है उनमें अध्यात्म है । भागवत में “पुरंजनेपाप्यान्” इसका नमूना है । वेद भगवदाश्वा है, संसार के लिये एक ऐसा कानून है जिसका कभी परिवर्तन नहीं और पुण्य उसके हृष्टांत हैं, उदाहरण हैं, हाईकोर्ट की सी नजीरें हैं । माता के स्तनों पर बालक मुख लगाकर पय पान करता है किंतु वहाँ जोंक के लगने पर दूध के बदले रक्त निकलता है । यह बात जुदी है, किंतु जो बाते” उनको आज असंभव दिखलाई देती हैं वे समय पाकर संभव भी हो सिद्ध हो रही हैं । जैसे आजकल बेलून ने सिद्ध कर दिया कि देवताओं के विमान सच्चे थे । हमारे शिक्षित समाज में सबसे प्रबल दोष

यह है कि जब तक पश्चिमी विद्वान् उन्हें न समझते कि उम्हारे शास्त्रों में अमुक बात अच्छी है तब तक वे उस अच्छी कंा भी बुरी मानकर उससे घृणा करते हैं, उसकी निष्ठा करते हैं और पानी पी पीकर उसे कोसते हैं । ”

“हाँ महाराज सत्य है । अब हमारी समझ में आया । आप ठीक कहते हैं । ” याँ कहकर उन्होंने पंडित जी का पिंड छोड़ा । तब से उनका इस किसी से संबंध नहीं रहा और न इसलिये उनके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता रही । अरु अब पंडित जी प्रभृति यहाँ के देवदर्शनों से निवृत्त हो गए । अब उनके लिये केवल एक ही काम शेष रह गया । उस कार्य को भी उन्होंने समय निकालकर कभी का निपटा लिया होता परंतु जब शास्त्र की आज्ञा है कि पर्वणी के बिना समुद्र स्नान नहीं करना चाहिए तब उन जैसा धार्मिक यदि पर्वणी की राह देखता हुआ वहाँ ठहरा रहे तो इसमें अचरज क्या ? फिर जितने दिन अधिक ठहरना हो उतना ही पंडित जी का लाभ और पर्वणी को भी अधिक दिन नहीं फिर यदि उनके साथियों ने शीघ्र चलने का तकाजा भी किया तो वह समुद्र-स्नान का लाभ छोड़नेवाले व्यक्ति कहाँ ?

लैर ! आज कार्तिक कृष्णा अमावस्या है । दिवाली से बढ़कर पर्व कौन है ? आज शीघ्र ही उठकर ये लोग स्नान संध्या से निवृत्त होकर श्री जगन्नाथ जी की मंगला की भाँकी करने के अनंतर समुद्र में गोता लगाने गए । और तीर्थों की

तरह यहाँ यात्रियों की भीड़ नहीं, मुँबचिरं भिखारियों का जमघटा नहीं और यहाँ तक नहीं कि यदि ये लोग किसी को एक पैसा देना चाहें तो कलम खाने के लिये कोई लेनेवाला न मिले । इस सुविस्तीर्ण महामागर के तट पर कोई घाट नहीं, किनारे किनारे भीतों तक चले जाइए, बस्ती से कोस दो कोस जहाँ तक जी चाहे चले जाइए और जहाँ जगह अनुकूल दिखाई दे मन भर कर खान कर लीजिए । घर से चलते चलाते दर्शन करते करते, उतावल करते करते इन्हें द्वेरा भी बहुत हो गई है । ये लोग ऐसे समय में पहुँचे हैं जब समुद्र द्वंदवता अपनी विशाल विशाल लहरों का उछाल उछालकर घरघराहट की विजय दुंडुभी बजाते, वायु भैया की सहायता पाकर किनारे पर फटकार का अच्छा चलाते टकराकर लौट जाते हैं । जहाँ अभी तक रेणुका की राशि पर राशि है वहाँ एक मिनट में जल ही जल । किंतु यह चिर-आधी नहीं । लोग सच कहते हैं कि समुद्र के “पाल नहीं कार है ।” अथवा यों कहा कि जब पृथ्वी से उसकी पीरी नहीं चलती तब यों ही मन मारकर लौट जाता है । अस्तु ! और कुछ न हो तो हमें समुद्र से दो बातों की शिक्षा अवश्य लेनी चाहिए । एक यह कि “क्षमाखङ्ग” करें यस्य दुर्जनः किं करिष्यति” और दूसरी यह कि यदि समुद्र की तरह हमें हजार बार किनारे को पार कर देने में आकर निष्फल लौट जाना पड़े तब भी निराश नहीं होना चाहिए । पृथ्वी ज्ञान की मूर्ति

है । चमा ही की बद्वैलत सागर जैसा बलवान पड़ासी उस पर आक्रमण पर आक्रमण करते रहने पर भी उसकी एक अंगुल जमीन नहीं ले सकता । जो मुठमर्दी से छोन लेता है उसे उसको भख भारकर व्याज कसर के साथ लौटा देना पड़ता है ।

समुद्र के किनारे खड़े होकर पंडित जी के मन में यही भाव पैदा हुए और इस तरह जो उन्होंने पाया उसे कंजूस के धन की तरह छिपाया नहीं । जो कुछ पाया उसे औरों को देने से बढ़ता है वैसे ही पंडित जी के अनुभव के खजाने में भी एक की वृद्धि हुई ।

अस्तु ! यहाँ और विशेषकर भाटे के समय स्नान करना हँसी खेल नहीं । समुद्र-स्नान और ऐसे एकांत को याद करके प्यारे पाठक यह न समझ लें कि दंपती ने मैदान पाकर खूब जलविहार किया होगा, खूब होलियाँ खेली होंगी । जहाँ जल में धुसते ही लहरों के जोर से वैर तले का रेता खिसकता है, जहाँ दस पंद्रह हाथ की मोटी लहर स्नान करनेवाले के भाष्ये पर हाथ फेरती हुई उसे जलमग्न करके किनारे की ओर ढकेलती और आदमी को चित्त गिरा देती है वहाँ यदि प्रियं-बदा डर के मारे जल में धुसने से घबड़ाती हो तो आश्चर्य नहीं । बड़ो देर तक समझा बुझाकर उसका भय छुड़ाने के अनंतर किनारे से कोई पाँच छः हाथ आगे बढ़कर उसने स्नान किया और तब भीगे हुए कपड़े को इधर उधर से खैंचकर अपनी लजा छिपाती हुई वह मथुरा की घटना याद करके

कभी शर्माती और कभी पछताती, यहाँ निर्विघ्न ज्ञान हो जाने से मुश्किल होती हुई बाहर निकली । ऐसे ही जब सब लोग ज्ञान कर्म से लियूत हो चुके तब पंडित जी बोले—

“ओहा ! बड़ा गंभीर है ! जिधर आँखे” फैलाओ उधर मीलों तक, दृष्टिमर्यादा तक जल ही जल ! जल क्या है मानों जल का एक पहाड़ खड़ा है ! किनारे की भूमि से अवश्य ही नीचा होना चाहिए । नीचा है तब ही पुरी को अपनी और दैंचकर जलमग्न नहों कर देता किंतु इन चर्मचक्षुओं से पहाड़ के समान ऊँचा दिखलाई दे रहा है । यह नीचा हो चाहे ऊँचाई में आकाश तक ही क्यां न पहुँच जाय, यह देवताओं का पृज्य और नदियों का स्वामी भा क्यों न हो और सूर्य भगवान् भी इसी से जल लेकर मेह क्यों न बरसावें किंतु बड़ा ही मंद भागी है । भगवान् के चरणों के निकट बस कर संसार सागर से पार कर देनेवाले पादपद्मों का दर्शन नहों पा सकता । शायद सागरत्व का इसे घमंड हुआ था । उस समय भगवान् रामचंद्र के बाणों की मार से इसकी अकल ठिकाने आ गई थी । तीन चुल्लुओं में महासागर का पान करके महर्षि आगस्त्य जी ने इसका अधिमान गंजन कर दिया । और तो और एक ज्ञुद्राति ज्ञुद्र पक्षी के अंडे तक को यह न बहा ले जा सका । मानो इस तरह यह पुकार पुकार कर कह रहा है कि एक अतुल ऐश्वर्यशाली, परम पराक्रमी और बलवान् होने पर भी जब ईश्वर के चरणों के दर्शन

पाने से वंचित हूँ तब मैं किसी काम का नहीं । मेरे घमंड को चूर करने के लिये ही मेरे विशाल वक्षःस्थल पर जहाज दैड़ाए जाते हैं । मेरे अभाग्य में केवल इतने ही सौभाग्य का चिह्न समझो जो किसी सुकृत के फल से मेरे मोती प्रभुचरणों तक पहुँच जाते हैं और इसी का यह फल है कि पर्वणी पर लोग मुझमें आकर स्थान करते हैं । नहीं तो मेरा खारा पानी न किसी के पीने के काम आता है और न नाना प्रकार के पदार्थ पैदा करने के ॥

वस इसी प्रकार की कल्पनाएँ करते और उन्हें साथियों को सुनाते पंडित जी घर गए । मार्ग में उड़ियों के शरीर से तेल की दुर्गंध, मरी दुई मछलियाँ की खरीद फरोखत और उनकी दुर्गंधि के मारे सिर कटा पड़ने की दुहाई देखकर नाक पर कपड़ा लगाए चले जाने से लोगों ने पंडित जी से शिकायत भी कम न की किंतु उस समय वह गले में उपवीत डाले एक ब्राह्मण को मछलियाँ खरीदते देखकर मन ही मन घबड़ा रहे थे, पछताते जाते थे और उनका ऐसा पाप कर्म देखकर उन पर ध्या करते जाते थे । इसलिये उन्हाँने किसी की शिकायत पर कान न दिया । मकान पर पहुँचकर ओड़ा सुस्ता लेने के अनंतर उन्होंने इतना अवश्य कहा कि—

“बाबा का यहाँ यदि मंदिर न होता तो कदाचित् भारत-वर्ष के धार्मिक हिंदू इसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते । विहार को गया और मिथिला ने पवित्र किया और उड़ीसा

को बाबा ने । इतिहासों से, पुराणों से इस बात का पता लगता है कि पहले ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया में हिन्दुओं का राज्य था । जब तक वहाँ वर्णाश्रम धर्म का पालन होता था तब ही लक हिंदू वहाँ जाते आते थे । जब उस और सनातनधर्म का निर्वाह न देखकर वहाँ गोवधादि धर्म नाशक कार्य होते देखे तब ही प्राचीनों को अटक नहीं के पार उत्तरने का निषेध करना पड़ा । विलायत जाने में लोग समुद्र-यात्रा की बाधा बतलाते हैं । यह भी बाधा सही है परंतु मैं इसे उतनी जोरदार नहीं समझता । मैं मानता हूँ कि वह भूमि गोवधादि दोषों से युग्युगांतरों से अपवित्र हो गई है इसलिये धर्मशास्त्र के मत से वहाँ का जाना अनुचित है । भारतवर्ष में भी इसी कारण अकाल पर अकाल पड़ते हैं ।”

पंडित जी का इस विषय में जो मत था उन्होंने अपने साथियों को संक्षेप से सुना दिया और गौड़बोले ने उनके कथन का अनुमोदन भी किया । दर्शन करने से अवश्य मन नहीं भरता किंतु यों ही करते करते चलने का दिन निकट आ गया । अब निश्चय हुआ कि जो कुछ कार्य अवशिष्ट है उसे एक दो दिन में निपटाकर यहाँ से विदा होना चाहिए । चलने की थीरों को उतावल न थी । केवल तकाजा बूढ़े भगवान्दास का था । बस उसी के तकाजे से इन्होंने वहाँ से चलने का मनसूबा किया ।

---

## प्रकारण—५०

### भगवान् में लों

भगवान् की पुरी धार्मिक हिंदुओं के लिये तो वास्तव में वैकुंठपुरी है ही किंतु नवीन समुदाय के लिये भी विश्रांति का केंद्र है। प्रथम तो समुद्र लट्टर्टिनी भूमि का पवन ही सुख-स्पर्श होता है। वहाँ न शरीर को भुलसाकर व्याकुल कर डालनेवाली लू का नाम है और न प्राणी मात्र के जीवनाधार शारीरिक रक्त का शोषण कर डालनेवाली कड़ी धूप का। बढ़ते बढ़ते वायुवेग की मात्रा यदि कभी कभी बढ़ जाय तो भले ही बढ़ जाय किंतु समुद्र के श्रुतिमधुर निनाद के साथ पवन के झकोरों से वृक्ष पल्लवों की खड़खड़ाहट मिलकर भगवती प्रकृति देवी को एक अजब राग से अश्रुतपूर्व बाजा बजाने और मधुर स्वर अलापने का अवसर मिलता है। वहाँ नवीन काट छाँट से, गमलों की माला से और दूब के तख्ते बनाकर वाग बगीचों को चाहे कृत्रिम सौंदर्य की साढ़ी न उढ़ाई जाय परंतु पुरी की पवित्र पृथ्वी को प्रकृति ने वन उपवन की स्वाभाविक हरियाली में नैसर्गिक लता पल्लवों की साढ़ी पहनाकर उन पर जंगली पुष्पों के हीरे मोती जड़ दिए हैं। जहाँ साक्षात् त्रिलोकीनाथ का निवास है वहाँ का जल वायु तो अच्छा होना ही चाहिए। बस इन्हीं बातों को ध्यान

में लाकर प्रकृति के उपासकों का, जिनका स्वास्थ्य की रक्षा करना ही परम कर्तव्य है, इसने जी ललचाया है। आठ मास तक पसीनाभकार परिश्रम के अनंतर श्रीष्म छहतु में भगवान् भुबन भास्कर की उम्र मयूरों से बचने के लिये अनेक युरो-पियन नर नारी सागर तटवर्ती बँगलों में निवास करते हैं। कितने ही सजनों ने न्यू रोग-पीड़ित मनुष्यों का स्वास्थ्य सुधारने के लिये एक “सेनीटोरियम” भी बनवा दिया है और लोग कहते हैं कि थोड़े ही काल में जब यहाँ युरोपियन अफ-सरों का श्रीष्म निवास बन जायगा तब नगर की सारी गंदगी निकल जायगी ।

यदि इस तरह गंदगी निकल सके तो अच्छी बात है किंतु इन बातों को देखते हुए भी पंडित जी से वहाँ के दो तीन सौ कोडियों की दुर्दशा देख देखकर आँसू बहाए बिना नहीं रहा जाता। अभी वह भगवान् जगदीश के दर्शन का आनंद लृटते हुए वियोग से दुखित होकर आँसू बहाते और “बाबा फिर दर्शन दीजिए” की विजय सुनाते हुए मानो आज अपना सर्वेष्व खोकर घर को जाते हों, इस तरह उदास मुख से, स्विन्न मन होकर आए हैं। सुर दुर्लभ महाप्रसाद पर जाने अनजाने यदि पैर पड़ गया हो, यदि भूल से अथवा जान बूझकर अवज्ञा हुई हो अथवा किसी तरह का अनाचार या पाप हुआ हो उसकी निवृत्ति के लिये समुद्र में स्नान कर आए हैं। अब भोजनादि से निपटकर असबाब बाँधना और जगदीश के पंडे

शितिकंठ महाशय को भेट देकर केवल उनसे विदाई लेना और गाड़ी पर असबाब रखवाकर स्टेशन को चलना अवशिष्ट है। पंडे महाराज भी उनके समीप हो विश्रामान हैं। गुरुजी का खासा कृष्ण वर्ण, सुदीर्घ काय, बड़ी बड़ी आँखें और छोटा सा चेहरा, बम यही उनका रूप रंग है। उनके सिर पर बनारस का बना जरीहार रेशमी साफा उनके काले मुखारविंष्ट पर अपने नील रंग के साथ साथ जरी की झलक दिखाकर आजब बहार दे रहा है। भीतर सूती बनथान और ऊपर मलमल का कुरता, कमर में धोती और हाथ में पानों का बटुचा, बस ये ही उनके बख हैं। एक नौकर की बगल में दो तीन बहियाँ, हाथ में दावात कलम और दूसरे के पास कंठी, प्रसाद और भगवान् के चित्र, बस यही सामग्री उनके साथ है। गुरु जी में यदि सबसे बड़ा गुण देखा तो यह कि उनमें विशेष लोभ नहीं है। वह न तो किसी यजमान का जी मसोसकर पैसा माँगते हैं और न धौरां की भाँति पाई पाई पर मूँड़ चीरते हैं। थोड़ी बहुत नम्रता करना, थोड़ी बहुत “नाहीं नूहीं” करना, थोड़ा बहुत हठ करना उनका पेशा है। इतना भी न करें तो कदाचित् यात्रा उन्हें अँगूठा दिखाने को तैयार हो जायें किंतु उन्हें परिणाम में जितना मिल जाय उतने ही पर संतोष है। आज भी उन्होंने पंछित जी को अटका चढ़ाने का परामर्श दिया, करमावाई की खिचड़ी के लिये सलाह दी और इसका अन्त अपन्य

बतलाकर आग्रह भी किया किंतु अंत में पंडित मंडली ने जो कुछ दिया उस पर संतुष्ट होकर कंठी प्रसाद और चित्र देकर उनकी पीठ ठोका दी । पंडित जी भी ऐसे संतोषी ब्राह्मण को कम देनेवाले थे ही थे । उन्होंने अंत में यथाशक्ति गुरु जी की भेट छरके उनसे कहा—

“महाराज, जो कुछ पत्र पुण्य हमसे बन सका आपकी भेट किया गया । जो कुछ दिया है वह केवल आपके योगज्ञेम के लिये है । भगवान् का धर न हमसे भर सकेगा और न हम उनके कुवेर से भंडार में एक सुट्ठी डालने में समर्थ हैं । वह विश्वभर हैं और हम उनकी चरण रज के भिन्नारी । भक्ति पूर्वक प्रणाम करना ही उनकी भेट है । सो हमने यहाँ आकर भी किया और यदि उनका सचमुच अनुग्रह हो, यदि हमारा अंतःकरण पवित्र होकर उनकी कृपा का अधिकारी बन जाय तो घर बैठे भी तैयार हैं क्योंकि चोर जब किसी के घर में सेंध लगाकर अथवा ताला तोड़कर भीतर जाता है तब चोरी का माल पाता है किंतु उनके समान दुनिया में कोई चोर नहीं । बाबा हमारे घर से हजार मील पर बैठा है, कदाचित् इससे भी अधिक दूरी पर, किंतु यहाँ ही बैठे बैठे सात ताले के भीतर से, हमारे हृदय में से उसका नाम लेते ही पाप चुरा लिया करता है । सो महाराज उसकी ऐसी चुराने की आदत हेतुकर सारे ही पापों का बोझा उसकी ढ्योढ़ी पर डालने और उसकी अनन्य भक्ति की भिन्ना माँगने को आए

थे । आप ऐसा आशोर्वाद दें जिससे उसके चरणारविंदीं से हमारा मन अलग न हो ॥”

“हाँ यजमान ठीक है । परंतु अटके और खिचड़ी का कुछ प्रवंध अवश्य होना चाहिए । इससे आपका नाम होगा ॥”

“महाराज, अटका खिचड़ी तो ठीक ही है ।” हमने भक्त-शिरोमणि करमावाई और मलूकदास बाबा के दर्शन कर लिए । महाराज विश्वभर को भरने की किसी में सामर्थ्य नहीं इसलिये यदि आप उचित समझें, यदि आप प्रसन्नता से आज्ञा दें तो मेरे मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ है । आशा है कि आप अवश्य स्वीकार करेंगे । मेरी राय यह है कि इस अटके और खिचड़ी में जितना द्रव्य लगता है उतना ही अथवा उससे मेरी शक्ति भर कुछ अधिक द्रव्य अलग रखें, उसमें आप भी अपने पास से यथारक्ति कुछ देकर, अपने यात्रियों से दिलाकर, अन्यान्य पंडों को उत्तेजित करके इसी तरह अच्छी पूँजी इकट्ठी कर लें । जितने यात्री यहाँ आते हैं सबको समझाकर इस कार्य में सहायता लें तो इन कोढ़ियों को रहने के लिये छाया का मकान, पहनने व्हाड़ने के लिये कपड़े, भोजन को महाप्रसाद और इलाज तथा सेवा शुश्रूषा के लिये योग्य वैद्य और परिचारक मिल सकते हैं । ऐसी सेवा शुश्रूषा से इनके दैहिक कष्ट कम होंगे, महाप्रसाद से इनका अंतःकरण विमल होगा और तब प्रभु चरणों में लौ लगने से इनका उद्घार होगा ॥”

“उत्तम परामर्श है। मैं सिर के बल तैयार हूँ। आपकी दी हुई भेट और अटका लिचड़ो का खर्च मिलाकर तो यह और इससे अधिक सौ ढेर सौ और भी मिला दूँगा। आज पीछे जितने यजमान यहाँ आकर मुझे देंगे उसमें से पांच रुपया सैकड़ा दूँगा। यात्रियों में से इस कार्य के लिये जो कुछ मिल जाय वह अलग। मैं अपने और भाइयों को भी उत्तेजना दूँगा। आपने ऐसी सलाह देकर बड़ा उपकार किया।”

“महाराज, आप हिंदी बहुत शुद्ध बोलते हैं। इस देश में ऐसी हिंदी ! यहाँ तो उड़िया की ‘आशो ! आशो !’ चाहिए।”

“मैंने हिंदी पढ़ी है। मैं हिंदी के ग्रंथ और समाचार पत्र पढ़ा करता हूँ। ये भला मुझे तो हिंदी से प्रेम ही है किंतु यहाँ नगर भर में फिरकर देखिए। यात्रियों में बंगाली हैं, गुजराती हैं, मराठे हैं, मदरासी हैं, पंजाबी हैं और प्रायः सब ही प्रांत के लोग आते हैं। ऐसे सभ्य हिंदों जाने बिना गुजारा नहीं। ये लोग आपस में बातचीत करते सभ्य हिंदी की शरण लेते हैं क्योंकि न तो एक मदरासी की बात पंजाबी सभ्य सकता है और न मराठे की बंगाली। लाचार हम लोगों को हिंदी सीखनी पड़ती है। हमारे जाति भाई और हमारे नौकर चाकर सब टूटी फूटी हिंदी बोल लेते हैं।”

“हाँ ! इसी लिये हिंदी किसी दिन भारतवर्ष की सार्व-जनिक भाषा बनने के योग्य है। बन भी रही है। प्रकृति स्वयं उसकी उन्नति कर रही है।”

इतनी बातचीत हो चुकने के अनंतर पंडित जी का उन यात्रियों से अपने संगी साथियों से संभाषण में महाप्रसाद की अवज्ञा पर, मत्स्यभक्षण के दोषों पर जो संभाषण हुआ था उसका प्रसंग छिड़ा । गुरुजी ने मस्तक झुकाकर इन दोषों को स्वीकार किया । अंत में कहा—

“ये बातें आवश्य मेटने योग्य हैं । उन्हें शीघ्र ही मिटाना चाहिए किंतु इसके लिये बहुत भारी उद्योग की आवश्यकता है । हथेली पर सरसों जमाने से काम न चलेगा । पीढ़ियों से पड़ा हुआ अभ्यास छुड़ाना है । यदि आप ही यहाँ दो चार महीना निवास करें तो काम शीघ्र हो सकता है । शक्ति भर सहायता देने और प्रयत्न करने को मैं तैयार हूँ किंतु आप जैसे पंडित की आवश्यकता है ॥”

इस पर पंडित जी का मन पिघल गया । नौकरी भले ही बिगड़ जाय परंतु यहाँ रहने को बे तैयार हुए । साथियों ने उनको बहुतेरा समझाया किंतु उनके मन में अब यहाँ रहकर कर्तव्य स्थिर करने के लिये विचार-तरंगे उठने लगे । उन्होंने किसी की कुछ न सुनकर बँधे बँधाए बिस्तरे खोल देने की भोला को आज्ञा दे दी । ऐसे जनरेली हुक्म के समय प्रियंवदा का क्या साहस जो उन्हें रोक सके । विचारा भोला यदि कुछ कहे तो उसके लिये फटकार की पोशाक मिल जाय । औरों की भी इस समय ताब नहीं जो कुछ कह सकें । किंतु अंत में होता वही है जो परमेश्वर को

स्वीकार होता है । जब भगवान् जगदीश की ही ऐसी इच्छा है तब कोई क्या कर सकता है ? इस प्रकार जिस समय अपना अमवाय ग्योलकर गाड़ीवालों को बिदा करके वहाँ ठहरने की ये तैयारी कर रहे थे तब ही इन्हें कांतानाथ का तार मिला । तार में क्या लिखा था सो इन्होंने किसी को बतलाया नहीं । प्रियंवदा भी इनकी ओर निहारकर बारंबार आँखों की आँखों में पूछती पूछती रह गई परंतु “कोई चिंता की बात नहीं । सब आनंद ही आनंद है” के मिलाय इन्होंने कुछ न कहा और फिर सामान गाड़ियों पर लदवाकर स्टेशन की ओर कूच कर दिया ।

पुरी से बिंदा होकर पहले इनका दक्षिण की यात्रा करने का दृढ़ संकल्प था । इन्होंने अपने साथियों से यह कह भी दिया था किंतु इस तार ने इनका मनसूबा बदल दिया । “भगवान् की इच्छा ही जब ऐसी है तब हमारा क्या चारा ? वह नटमर्केट की तरह सब को नचाता है । हम विचारे किस गिनती में ।” कहकर यह चुप हो गए । अब आँखों में से आँसुओं की धारा वह रही है, यह गाड़ी में सवार हुए हैं और इनका शरीर भी आगे बढ़ रहा है किंतु इनके मुख के भाव से बोध होता है कि मानों यह अपने हृदय को पीछे ही छोड़ आए हैं । इन्होंने खिंड़की में से सिर बाहर निकाल रखा है और वे एकदम पलकें न मारकर “नील चक्र” पर नेत्र गाड़े चले जा रहे हैं । पहले तो साधारण हृषि से

उसके दर्शन होते रहे, फिर जरा जोर मारने से होने लगे और एक चण्ड भर में नील चक्र दृष्टि-मर्यादा से बाहर हो गया। उसने मानो कह दिया कि “जाओ। इतने ही पर संतोष करो। जो पूँजी तुम्हें मिली है यदि भक्तिपूर्वक उसकी वृद्धि करोगे तो वह भी कम नहीं है।” परंतु पंडित जी ने जिसे एक बार पकड़ा उसे वे छोड़नेवाले नहीं। भगवत् चरणारविंश यदि सुकृत से, सौभाग्य से मिल जायें तो छोड़ने योग्य भी नहीं। पृथ्वी में, आकाश में, पाताल में, स्वर्ग में और उससे भी ऊपर गोलोक में परमेश्वर के पादपद्मों से बढ़कर कोई नहीं। बस इसलिये इन्होंने महात्मा सुरदासजी का—

“बाँह छुड़ाकर जात है, निवल जान कर मॉहि।

हिरदा में साँ जायगो, मरद बैरोंगो तोहि ॥”

यह दोहा याद करके बस इसी बात के प्रयत्न में अपना मन लगाया। मन स्थिर होते ही जब इन्हें कुछ ढाढ़ा स हुआ तब इनकी ऐसी ऐसी विचित्र चेष्टाओं को देखकर घबड़ाई दुई प्रियंकदा को इन्होंने धीरज किया, गौड़बोले की उट्ठिगता मेटी और औरों को भाँ संतुष्ट किया। पाठकों ने समझ लिया होगा कि पंडित जी इसके पूर्व विहल हो गए थे। वास्तव में वह किसी लिये हों कितु थे विहल और इसी लिये टिकिट लेने का काम गौड़बोले ने किया। वह भी घबड़ाहट में थे और रेल की पहली घंटी हो चुकी थी इसी लिये दंपती के लिये उन्होंने इंदर कास के टिकिट लेने की जगह शर्ड के

( ४४ )

टिकिट लिए और यांच सब लोगों को एक ही दर्जे में बैठने का अवसर मिल गया ।

अब पंडित जी भगवान् का स्मरण करते, जगदीश की मृत्यि में ध्यान लगाए, कभी बातें करते और बीच बीच में कह रुककर ध्यान-सम्बन्ध होते हुए आगे बढ़ने लगे । सच-मुच ही पंडित जी ने नेत्र संचालन के प्रेम-संकंत से अपनी चिर परिचित लोचनों की भाषा से प्रियंवदा को संतुष्ट कर दिया था किंतु जब तक उनकी गौड़बोले से धाराप्रवाह वक्तृता न आरंभ हुई थी वह मन ही मन मन को मसोसती रही ।  
अब उसके जी में जी आया ।

## प्रकरण—५१

### कांता पर कलंक

पंडित रमाकांत शास्त्री ने लड़कों को पढ़ा लिखाकर रुपया कमाने में प्रवोग कर दिया था, वर्णाश्रम धर्म के सिद्धांत उनके हृदय पटल पर अंकित कर दिए थे, इहलौकिक और पारलौकिक ज्ञान उनके मन में इस रीति से ठसा दिया था कि वे कभी ठोकर न खायँ और कभी भलाई छोड़कर बुराई की ओर एक पैर भी न बढ़े । इतना होते पर भी उन्हें इस बात का खटका था कि कहीं युगधर्म बालकों पर अपना असर डालकर उन्हें रुपए पैसे के लिये आपस के लड़ाई भगड़े में न प्रवृत्त करे, जबान होते ही अपनी अपनी जोखीओं को लेकर बेटे अलग न हो बैठें । यदि पड़ोसियों से लड़ाई भगड़ा रहा तो आदमी ने पैदा होकर ही क्या किया ? यदि कुल के, जाति के, बस्ती के और हो सके तो देश के चार सज्जनों ने जिसकी प्रशंसा न की उसका जन्म लेना निर्यक है । वह कहा करते थे—

“गुणगणनारंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य ।

तस्यांबा यदि सुतिनी वद वंध्या कीदृशी भवति ॥”

इस श्लोक को दिन भर में कम से कम एक दो बार पढ़ाकर वह बेटों को समझाया करते थे कि “यदि तुमने जन्म लेकर गुणवानों में गणना न करवाई, यदि गुणवानों की

गणना करते हुए तुम्हारे नाम के साथ गिनतेवाले का अँगठा अँगुलियों की पेरों पर ज पड़ा तो तुमने भख मारा, योंहो अपनी माता को नौ महीने तक असह बेखना दी, तुम्हारे लालन-पालन में वृथा ही उसने पीड़ा पाई और तुम्हारा खिलाया, पिलाया, पढ़ाया, लिखाया सब फिजूल गया ।” माता उनकी चाहे पढ़ी लिखी न हों किंतु पति के साथ, पुत्रों के साथ, पछासियों के साथ और नौकरों के साथ कैसा बताव करना चाहिए घर गृहस्थी में रहकर क्योंकर अपनी बात निवाहनी होती है और यो शरीर धारण करके उसका कर्तव्य क्या है, इन बातों को वह अच्छी तरह जानती थीं और सदा इन्होंने अनुसार चला करती थीं। चोरी, व्यभिचार, मिथ्याभाषण आदि बुराइयों से उसे पूर्ण वृणा थी और वह सदा इसी विचार में रहती थी कि कहाँ मेरे नन्हों में ऐसे ऐसे ऐसे न पैदा हो जायें । यद्यपि अपनी जन्मदात्रों माता का सुख इन दोनों भाइयों के नसीब में नहीं था क्योंकि वह दोनों ही को बिलबिलाते छोड़कर छोटी उमर में चल बसी थीं किंतु जब बूढ़ी दुलरिया ने ही इनको पाल पोस्कर इन गुणों से भूषित कर दिया तब उसे माता से भी बढ़कर इन्हें समझना चाहिए क्योंकि अपनी असली माता के जो गुण इन्हें धरोहर मिले थे उन पर बुढ़िया ने ओप चढ़ा दिया ।

ऐसे सजन माता पिता की संतान होने पर भी, सदा भाई भाई के संयुक्त रहने की सलाह देने पर भी, संयुक्त कुटुंब के

लाभ समझाते रहने पर भी वे छरते थे कि कहाँ बहुआं की घटौलत अथवा पैसे के लिये ये आपस में उलझ न पड़े, इसलिये उन्होंने अपने जीते जी अपने माल ताल का, अपने धन दैलत का, बाग मकान का, लेने देने का और जमींदारी का बटवारा कर दिया था। उनके लिये मकान इस ढंग के बनवा दिए थे जिनमें यदि वे अलग अलग रहें तो भी सुख से रह सकें, लड़ाई हो जाय तो एक की दूसरे पर परछाँही तक न पड़े और मिलकर रहें तब भी सब बातें की सुविधा रहे। हाँ ! दो चीजें के हिस्से नहीं किए थे। एक ठाकुर-सेवा और दूसरा पुस्तकालय। इनके लिये उनकी यह आज्ञा थी कि—

“यह तुम्हारी संयुक्त संपत्ति है। जो योग्य हो, जिसको आंतरिक भक्ति हो उसी का इन पर अधिकार है। नास्तिक को ठाकुर-सेवा देना कौवे को कपूर चुगाना है और निरक्षर भट्टाचार्य के पाले यदि मेरी पुस्तकों पढ़ जायें तो पंसारियों के यहाँ बिकती फिरें।” केवल यही क्यों ? उन्होंने इनके लिये अलग जीविका निकालकर ऐसा स्वतंत्र प्रबंध कर दिया था जिससे ठाकुर-सेवा अच्छी तरह होती रहे और पुस्तकालय में पुस्तकों की वार्षिक वृद्धि होकर लोगों को उससे लाभ उठाने का अवसर मिले।

मकान उनके लिये जो बनाए थे वे यथमि ऐसे थे जिनमें धर के दस पाँच आदमी और हो चार नौकरों को स्वतंत्रता से रहने की गुंजायश थी किंतु इसके साथ शास्त्री जी इस बात

को भी नहीं भूले थे कि यदि प्रारब्धवश मेरे लड़के इतने दरिद्रो हो जायें कि उनको पनिहारी, पियनहारी रखने तक की शक्ति न रहे तो मेरी बहू-बेटियों को जल का घड़ा सिर पर रखकर बाहर न जाना पड़े । इस कारण उन्होंने घर में कुँआ भी ऐसा खुदवा दिया था जिससे बहू-बेटियाँ घर के भीतर से अद्वित के साथ पानी भर सकें और ऐसे ही वह घर से बाहर-वालों के भी काम में आ सके ।

जब से अपने कुकमों के कारण सुखदा को सजा मिली तब से पति परगात्मा उसके हाथ का बनाया भोजन नहीं करते हैं । रुखा सूखा खाना, मोटा भोटा पहनना और चटाई पर पड़ रहना, घर से बाहर कभी कदम न रखना वस ये ही उसके लिये जेलखाने की मिहनतें हैं । कृच्छ चांद्रायण ब्रत करके पति की बहुत चिरौरी करने पर, फिर ऐसा अपराध स्वप्न में भी न करने की दृढ़ प्रतिक्षा करने पर पति ने उसे अपनी धोती धोने का, जूठे बरतन मल देने का अधिकार अवश्य दे दिया है । अब जब उस पर बहुत ही कृपा होती है तब वह पति की थोड़ी बहुत जूठन भी पा लेती है कितु समझे पाठक ! वह कृपा कब होती है ? जब वह स्वयं अपनी आँखों से गोशाला में जाकर गौओं की सेवा में, बछड़े बछियों के लालन पालन में उसे मस्त देखते हैं । जब शाखाकारों ने—

‘आज्ञाभिंश्च नरेन्द्रणां ब्राह्मणानामनादरः ।  
पृथक् शश्या च नारीणामशश्विहितो वधः ॥’

की व्यवस्था दी है और जब वह पति की उपस्थिति में उनके निकट रहकर भी वैधव्य भोग रही है तब उसके अंतः-करण में व्यथा तो होनी ही चाहिए किंतु फिर भी जब से उसने गोसेवा में मन लगाया है तब से वह इस दुःख को भी सुख मानकर मग्न रहती है । वह मग्न रहती है और इस आशा से आनंद में रहती है कि उसे जो सजा दी गई है वह आजीवन नहीं है । उसकी अवधि है और अवधि के दिन दिन दिन निकट आते जाते हैं ।

अवश्य वह इस घर के, पति पत्नी के परस्पर वर्तीव का स्थान है किंतु मथुरा का तिरस्कार होने के दिन से जब उसके पास छियों का आना जाना बंद है तब लोगों को क्या मालूम कि वे आपस में किस तरह बरतते हैं । कोई पत्नी के पैरों में बेड़ियों डालकर नित्य उसके दस जूते मारने की दुहाई देती है और कोई कोई यहाँ तक कह डालती है कि वह विचारी दाने दाने को तरस रही है । आठ पहर में एक बार खखी सूखी मिल गई नहीं तो योंही भूखों भरते अपने घटते दिन पूरे किया करती है । इस प्रकार की बातें उड़ाना, यों कह करके पतिपत्नी की धूल उड़ा डालना जिसने प्रह्ल किया है वह यदि आटा बाँध कर उनके पीछे पड़ जाय तो क्या आशच्चर्य ? उसने तलाश कर करके दो चार ऐसी औरतें खड़ी कर ली हैं जो इनके घर की झूठी मूठी बासे गढ़कर उन पर खबर रंग जमाती हैं । “हलदी लगै न फिटकरी रंग चौखा आवे ।”

इस कहावत के अनुसार रंग भी अच्छा जम गया है । अब कोई कहती है—“हमने अपनी आँखों से उसे जुतियाते देखा है ।” किसी का कहना है—“हाँ ! हाँ ! पिटते पिटते उसके सिर के बाल उड़ गए ।” इनके बीच में पति का पच्चलेकर कोई कोई कसास खाने तक को तैयार है—“मारे नहीं तां क्या करे ? वह अब भी हरामजादी इधर उधर ताक भाँक लगाने से बाज नहीं आती ।” एक बार एक आदमी ने कह दिया कि मेरे पेट में से कौवे का पर निकला । कौवे का पर पेट में से निकला नहीं था । वहाँ पड़ा देखकर यों ही उसे ध्रम हो गया था । किंतु जब यह खबर लोगों के कानों पर पड़ी तो एक से दो, दो से चार और यों ही बढ़ते बढ़ते सौ पर हो गए । पर से कौवे बन गए । बस यही इशा इन दंपती की है ।

इस तरह बस्ती भर में इनकी निंदा के तह पर तह चढ़ाए जा रहे हैं किंतु इन दोनों को बिलकुल खबर नहीं कि हमारे लिये लोगों ने किस तरह बात का बतांगड़ बना रखा है, कैसे हमारी फजीहती की जा रही है । बस इसी लिये ऊपर लिखा जा चुका है कि दंपती अपने अपने हाल खथाल में मस्त हैं । उन्हें अपने काम से काम है । दुनिया के झगड़ों से कुछ मतलब नहीं । फिर पति को घरधंधों के आगे, अपने काम काज के भार इतना अवकाश भी तो नहीं मिलता कि किसी के पास इस मिनट बैठकर इधर उधर की गप्पे तो सुन लिया करें ।

खैर ! वह इस तरह से चुप हैं तो रहने दीजिए किंतु जब मथुरा उन दोनों के पीछे पड़ी है तब वह चुप कैसे रह सकती है। आज उसे अकस्मात् ममाला भी अच्छा मिल गया। इनकी एक पड़ोसिन ने भोर ही पनवट के कुँए पर बस्ती के बाहर जल भरते भरते दस बारह पनिहारिनों के सामने मथुरा से कहा—“बीर ! आज रात को हमारे पड़ोस में न मालूम धमाका किसका हुआ था ? ऐसा धमाका कि मैं तो भरी नींद में चौंक पड़ी । निपूती तब से नींद भी न आई !” बस इसका यह मतलब निकाला गया कि पति ने मारकर अपनी जीरू को कुँए में गिरा दिया अथवा पिटते पिटते घबड़ाकर वही कुँए में गिर पड़ी । बस विजली की चमक की तरह घंटे भर में यह बात सारी बस्ती में फैल गई । इस पर खूब ही रंग चढ़ा, यहाँ तक कि आने में रिपोर्ट करने लोग दैड़े गए । तीन मील चलकर एक साहब पंडित प्रियानाथ को तार देने दैड़े गए और कितने ही महाशय इस बात का भेद लेने के लिये, कई एक कांतानाथ से सज्जानुभूति करने के लिये और बहुत से नर नारी तमाशा देखने के लिये पंडित जी के मकान के द्वार पर इकट्ठे हो गए ।

बस पंडित प्रियानाथ के पास पुरी से बिदा होते समय जो तार पहुँचा था वह उन्हीं साहब का दिया हुआ था । तारबाबू ने कांतानाथ के नाम से दिया हुआ तार दूसरे के हाथ से लेने में थोड़ी बहुत हुज्जत भी की थी किंतु पंडित जी

से उसका स्नेह और यह उनके घर का मामला, इसलिये वह तार को रोक न सका। जिस तार को पढ़कर उन्होंने दक्षिण यात्रा बंद कर दी उसमें लिखा था—

“मेरी खी कुँए में गिरकर मर गई। बड़ी भारी आफत है। आर डालने का इलजाम मुझ पर लगाया गया है। फौरन आओ।”

इस तार को पाकर पंडित जी ने क्या किया, इससे उनकी दशा क्या हुई, सो गत प्रकरण में लिखा जा चुका है। हाँ उन्होंने जब भी तक यह नहीं बतलाया कि तार को पढ़कर उनके मन में क्या बात पैदा हुई, उन्होंने इस तार को सज्जा समझा है अथवा नितांत मिथ्या, और जब केवल अटकल लगाने के सिवाय उनकी श्रद्धांगिनी प्रियंवदा तक उनके मन का भेद नहीं जान सकी है तब जब तक वह अपने मुँह से न कह दें कौन कह सकता है कि उनको घबराहट केवल इस तार को पाने से थी अथवा श्री जगदीश के चरणों के वियोग से वह व्याकुल थे। इनमें से कोई एक बात भी हो सकती है और दोनों संयुक्त भी।

खैर ! इस यात्रापार्टी को अभी इस उधेड़बुन में पढ़े रहने दीजिए, यदि पंडित जी अपनी धुन में सवार होकर रेल में सवार हुए अपने घर की ओर आ रहे हैं तो आने दीजिए किंतु अब भी उनके पिता के उपकारों का याद करके, उनके आतंक से डरकर और कांतानाथ की लात से घबड़ाकर

और सबसे बढ़कर पुलिस के भय से उनके द्वार पर इतनी भीड़ इकट्ठी होने पर भी किसी का यह हिंसाव नहीं होता कि वह उनके मकान की चौखट के भीतर तो पैर रख सके ।

किंतु वास्तव में आज मामला क्या है ? जिस बैठक में अब तक दस बीस आदमी आए और चले गए होते, जिसमें आपामियों की, कामकाजियों की और लेन देनवालों की प्रातःकाल से आवा जाही लगी रहती है उसका इस बजे तक किवाड़ा क्यों बंद है ? घर का किवाड़ बंद होकर भीतर से साँकल चढ़ रही है और आदमियों के भीतर फिरने डोलने तक की आहट नहीं । हाँ ! भीतर से कभी कभी सुरीली आवाज से कुछ गाने अथवा योंही शुनगुनानं की भनक अवश्य आ रही है परंतु इसका मतलब क्या ? जिस समय वहाँ खड़े हुए नर नारी इस प्रकार तर्क पर तर्क लगाकर अपने संदेह को पक्का कर रहे थे उस समय भीड़ को अपनी डॉट डपट से डराती, इस तरह मैदान करती पुलिस आ पहुँची । अब एक, दो, छह, बीस कई एक आवाजें ही गईं परंतु जवाब नहीं । तब बढ़ी को बुलाकर किवाड़ तोड़ा गया । पुलिस ने कुँए के पास जाकर उसमें चिल्ली डाली परंतु थोड़े बहुत कूड़े करकट के सिवाय चिल्ली खाली । यद्यपि घर की तलाशी लेने के लिये पुलिस जाकर जनाने और भर्दाने मकानों को देख सकती थी, जो मुकद्दमे पुलिस की दस्तदाजी के हैं उनमें उसके अधिकार अपरिमित हैं किंतु चाहे संकेत

से कहो चाहै कुँए में कुछ न पाने से उसका संदेह दुबला पड़ गया था, इसलिये भीतर जाने में उसे शंका हुई और इसी विचार में उसने कोई बीम मिट तक चुपचाप खड़ी रहने के सिवाय कुछ न किया ।

इस अवसर में कांतानाथ बाहर से आए । वह शायद रात से ही कहीं गए थे । उन विचारों को मालूम नहीं कि शत्रुओं ने इस तरह उन पर आफत बरसाने का प्रपञ्च खड़ा किया है । यद्यपि उन्हें आफत की परकाला मशुशा से खटका रहा करता था परंतु उनकी समझ में न आया कि आज उनके मकान में इतनी भीड़ क्यों है ? अस्तु भीड़ से भीड़ परंतु जब उनकी दृष्टि लाल साफे पर पड़ी तब वह एकदम हँकेबके से रह गए । इस घटना को लेखकर वह घबड़ाए भी सही, शायद उन्हें उस समय कोई ढाढ़स दिलानेवाला होता तो वह रो पड़ते किंतु उन्होंने अपनी तबियत सँभाली, जी कड़ा किया और तब एक डाँट बतलाकर वह बोले—

“हैं हैं ! दीवान जी साहब आज यह क्या बला है ? क्या डाँका पड़ गया ? या कोई खून हुआ है ? आज इम सरगर्मी के साथ ?”

“नहीं ! डाँका नहीं पड़ा ! खून बतलाया जाता है । और उसके मुलजिम आप ही गरदाने गए हैं । इस आदमी ( एक को दिखाकर ) ने रिपोर्ट की है कि आपने अपनी जोख का खून करके उसे कुँए में डाल दिया ।”

“हैं मैंने ? क्यों ? ऐसी क्या आफत पड़ो थी जो मैं एक श्रौरत की जान लेता ? खैर ! कुँए से लाश बरामद हो गई ? अगर हो गई हो तो मेरा चालान कीजिए ।”

“अजी हजरत, ऐसी टेढ़ी टेढ़ी बातें क्यों करते हैं ? जरा मँभलकर बात कीजिए । अगर लाश ही बरामद हो जाती तो कभी की हथकड़ी भर देते । मगर लाश ही बरामद न होने में आप बरी नहीं हो सकते । आपको अपनी सफाई का सुबूत देना होगा ।”

“खैर ! इज्जत तो आज आपने बिगड़ ही डाली मगर मेरे साथ अंदर चलिए । शायद लाश ही अपना जवाब आप दे लें ।” यों कहकर कांतानाथ दीवान जी का हाथ पकड़े हुए जनाने सकान में जाकर बोले—

“अच्छा बाल री लाश, तुझे किसने मारा ?” उनके ऐसा खाल करने पर परदे की ओट से जवाब आया—“कौन निपूता मुझे मारनेवाला है ? मैं तो अभी सौ वर्ष [जिंदगी] आवाज सुनते ही पुक्षिस शर्मा गई, रिपोर्ट देनेवाले का खून सूख गया और भीड़ भाग गई । “अब भी आपको शक होता उस लाश को बाहर भी बुलवा सकता हूँ । खैर, पर्दा तो बिगड़ ही भया । अब बाहर बुलवाने में क्या हर्ज है ?”

“नहीं ! ज़रूरत नहीं । यह हमारे गाँव की लड़की है, इनके बालिद और मेरे बालिद से खूब जान पहचान थी । मैंने सैकड़ों बार देखा भाला है । आवाज पहचान ली ।”

“अच्छा ! उसी रिश्ते से आज आप अपनी बहन को यह नेग देने आए हैं । बड़ी इनायत की ।” इस पर दीवान जी कुछ भी पैदा करने के लिये एक और भीतर भेजी परंतु जब उसने भी भीतर से आकर यही उत्तर दिया—“हाँ पंडित वृंदावनविहारी की बेटों और इनकी बहु सुखदा है ।” तब शम्मति हुए—“आपको तकलीफ हुई । गुआफ कीजिए । मैं भी मजबूर आ । मैंने अपना फर्ज मसनवी अदा किया और सो भी इस बदमाश के रिपोर्ट करने पर ।” “नहीं कुछ हर्ज नहीं । आपका कोई कसूर नहाँ । लौकिन लाला जी तुम तो मिठाई लें जाओ ।” कहकर कांतालाश ने रिपोर्ट देनेवाले की खूब गत बनाई और इस तरह जब भाड़ छाट गई तब भीतर जाकर “तैनं खूब काम किया ! शावाश ! आज से तेरे सब अपराध चमा । भाई से पूछकर तेरा आंगीकार ।” कहते हुए वह दवे पाँव बाहर निकले और इस घटना का पूरा हाल सुनकर दौड़े हुए लारवर पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्हाँने संचेप से बड़े भैया को तार दिया और तब वर लौटकर भोजन किया ।

## प्रकरण—५२

### अपकार के बदले उपकार

“मुझा ऐसा भी क्या आदमी जिसने दुःख है देकर मेरी बेटी का सारा डील सुखा डाला !”

“हाँ ! विचारी को न पेट भर खाने को मिलता है और न पहनने को अच्छा सा कपड़ा !”

“वेशक ! सूखकर काँटा हो गई । एक एक हड्डी हड्डी गिन लो !”

“आदमी नहाँ ! भूत है ! जिन्हे है ! राक्षस है ! पश्चर से भों कठोर !”

“हाँ हाँ ! देखो तो सही गरीब का बदन सूखकर पिंजर निकल आया !”

कार्तिक शुक्ला प्रवोधिनी एकादशी के दिन पंडित जी के मकान पर भगवान् के दर्शनों के लिये आनेवाली चार पाँच छियों ने सुखदा के पास आकर इस तरह उसके साथ सहानुभूति प्रकाशित की । ये औरतें और कोई नहाँ, इनकी किसी न किसी प्रकार से दूर की और पास की नातेदार थीं । उनकी हमदर्दी सच्ची थी अथवा सुखदा का मन टटोलने के लिये ही वे आई थीं सो कहने से कुछ लाभ नहाँ किंतु पंडित कांतानाथ

की खी ने उनको जो उत्तर दिया वह यहाँ उल्लेख कर देने चाहय है । उसने कहा—

“नहाँ जी ! मैं दुबली कहाँ हूँ ? अच्छा खासी, मोटी मुस्टर्डी हूँ । और खाते खाते ही सूख जाऊँ तो किसी का क्या बश ? और जो दुबली भी होऊँ, भर ही क्यों न जाऊँ तो किसी को क्या ? मैं बुरी हूँ तो (आँखें तिरछी करके, इशारे से समझाती हुई और तब लाज से मुँह को आँचल की ओट करके) उनकी दाढ़ी, चरणों की चाकर—और भली हूँ तो उनकी । यह हजार मारेंगे और एक गिनेंगे । तुम्हें क्या मतलब ? मारें तो वह मेरे मालिक और प्यार करेंगे तो मालिक ! भगवान् ऐसा मालिक सबको दे ! मेरे स्वामी हूँ । मैंने कभी कुसूर किया तो सजा भो पा ली । तुमको तुम्हारे आदमियों ने मारा पीटा, यहाँ तक कि (एक की ओर इंगित करके) इनको तो जूते मारकर घर से निकाल दिया था तब मैं किसके पास सुख पूछने गई थीं जो आज मेरे पास भली बनकर तुम सब थाह लेने आई हो ? तुम भी क्या करो ? सारा कुसूर इस हरामजादी मथुरा का है ! इसी ने झूठी मूठी बातें बनाकर मुझे बदनाम कर डाला । मैं फिर भी कहती हूँ (मथुरा से) तू अपना भला चाहती है तो अभी घर से निकल जा । नहाँ तो जो उन्हें खबर हो गई तो अभी तेरी गत बना डालेंगे । आदमी हैं । गुम्सा बुरा होता है ।”

इनकी बातचीत किवाड़ की ओट से कांतानाथ सुन रहे थे । किसी को कुछ खबर न हो इसलिये उन्होंने चुपचाप

साँस खैंचकर सारी बातें सुनीं । वेशक उनका इरादा नहीं था कि वे इनकी बातों में जाकर दखल देवें किंतु मशुरा का नाम आते ही इनका क्रोध भड़क उठा । इन्होंने ज्यों ज्यों उसे रोका त्यों त्यों वह अविक अधिक अविक ज्वालाएँ छोड़ने लगा । वस किवाड़ को एक ही धक्का देकर खोलते हुए गुस्से से लाल लाल हांकर यह भीतर घुसे । इनकी विकराल मूर्ति दंखकर सबके होश उड़ गए । वे सब की सब भागी और ऐसी भागी कि किसी का रुमाल गिर गया, किसी का बटुआ गिर पड़ा और यहाँ तक कि किसी की पायजेब निकल गई । इनमें से दो एक उलझ उलझाकर गिर भी पड़ों और एकाध का सिर भी फूट गया किंतु इस भाग द्वौड़ में मशुरा की चौटी इनके हाथ आ गई । यह उसे खैंचकर उसकी लातों से पूजा करने ही वाले थे । उसकी गत बनने में कुछ कसर बाकी नहीं थी । क्रोध बहुत युरी बला है । हृदय में उसका प्रवेश होते ही बुद्धि भाग जाती है, ज्ञान का नाश हो जाया करता है । इसी लिये अमुमवी विद्वानों ने इसकी भूत की उपभा दी है । वास्तव में यदि क्रोध का भूत सबार हो जाने से पंडित जी उसके एकाध हाथ मार वैठते तो बड़ा गजब हो जाता । वह चाहे जैसी पापिनी क्यों न हो, उसने इनका कितना ही अपकार क्यों न किया हो किंतु खो जाति पर हाथ उठाना घोर अनर्थ है । वैर किसी तरह के पाप कर्म में प्रवृत्त होते समय जैसे मनुष्य का अंतःकरण, उसकी बुद्धि मन का हाथ पकड़ लिया करती है,

जैसे एक बार वह ऐसा काम न करने की चितौनी देती है वैसे हो इनके मन के अद्वलते हुए, चौकड़ी भरते हुए धोड़े की बाग उसने पकड़ ली । जूते समेत लात और घूमा बँधा हुआ हाथ इन्होंने उठाया तो सहो किंतु एकदम कुछ विचार आते ही वह सँभले और उसके शरीर की ओर देखते ही इनका क्रोध दया में विलगया—

“राम राम ! बड़ा अनर्थ हो जाता ! जाने दो रांड को ! परमेश्वर इसे दंड दे रहा है । इससे भी बढ़कर देगा । इसका शरीर में कोढ़ चू उठा । इससे बढ़कर क्या दंड होगा !” कहते हुए इन्होंने अपना हाथ और पैर समेट लिया और वह भी सभय पाकर अपनी जान लिए हुए ऐसी भगी कि मुहत तक उसकी शक्ति भी न दिखलाई दी । कार्द वर्ष दो वर्ष के अनन्तर यदि वह दिखलाई भी दो तो कोढ़ के मारे उसकी अँगुलियाँ गल गई थीं । तगाम बदन फूट निकला था । मक्खयाँ काट काटकर उसे कल नहीं लेने देती थीं और दुर्गंधि के मारे किसी से उसके पास होकर निकला तक नहीं जाता था । वैर उसने जैसा किया वैसा पा लिया । जो बबूल बोता है उसे काँटे ही मिलते हैं, आम नहीं । यह इन लोगों की भलाई है कि उसके इतने अपकार का बदला इन्होंने उपकार में दिया । जब तक उसके शरीर में प्राण रहे, उसके पापी प्राण वास्तव में बड़े ही धोर कष्ट भोगकर निकले, इन्होंने उसके स्थाने पीने का, पहनने ओढ़ने का

और दवा दाढ़ का प्रबंध कर दिया और जब उसका शरीर कीड़े पड़ पड़कर, दम छुट छुटकर बड़ी मुश्किल से घोर नरक यातना भोगकर छूटा तब उसे गड़वा दिया और उसके मरने के बाद उसका कर्म करवा दिया । अपकार के बदले उपकार करने का यही नमूना है, जो जैसा करता है वह वैसा पा लेता है । इसे साधित कर देने के लिये यही प्रमाण है । अस्तु इस बात से इस किसी का विशेष संबंध नहीं । यदि संबंध भी हो तो विशेष कागज रँगने से पुस्तक की मोटाई बढ़ जायगी । इसलिये इतना ही बहुत है । यहाँ यह अवश्य खिल देना चाहिए कि जिसका जो कुछ गिरा था वह आदमी के हाथ उसके मकान पर भेज दिया गया और जब उसके घरवालों को इस बात की खबर हुई तब उन्होंने अपनी अपनी खियों को फटकारा भी खूब । सैर ! इस तरह जब मथुरा अपनी जान लेकर भाग निकली तब पति ने पक्की से कहा—

“बेशक, अब तू सँभल गई । इतने दिनों के कठिन ब्रत ने तुझे सँभाल लिया । परमेश्वर ने तुझे बचाया । वही सब की लाज रखनेवाला है । भाई साहब भी अब शीघ्र ही आने वाले हैं । अब विशेष विलंब का काम नहीं । बढ़ाना मत !”

“यह सब आपके चरणों का प्रताप है ! मेरे तो भगवान् भी आप और आप भी आप ! नहीं जी ! इतने दिन न बढ़-

डाई तो अब क्या घबड़ाऊँगी ? अब वे दोनों भाने ही बाले हैं। वे जैसी आङ्गा दें वैसा करने को तैयार हैं। उनसे भी अपने कुम्हों के लिये मुझफी मार्गँशी ।”

इतना कहते हुए सुखदा राने लगी। पति ने धीरज दिलाकर दिलासे के बचन कहकर उसको संतुष्ट किया और तब वह अपने काम काज में प्रवृत्त हुए। ऐसे कांतानाथ अपने काम में लग ही गए तो क्या हुआ किंतु उनके अंतःकरण में एक तरह का खटका हो गया। अब उन्हें देख बातों का चिंता थी। एक इस प्रकार की बदनामी उड़ानेवाले कौन कौन हैं और दूसरे हमारे लिये सर्व माधारण की राय क्या है ? जब से वह अधिविच में यात्रा छोड़कर घर आए उन्होंने अपने काम काज में विशेष जी लगाकर, नए नए काम खोलने में प्रवृत्त होकर लोगों से मिलने भेंटने से मन खैंच लिया था। संसार का मुख्य सुख, यावत् सुखों का केंद्र खो और उसके ऐसे कुकर्म ! बस इन बातों को याद करके वह एक तरह दुनिया ही से उदासीन हो गए थे। क्योंकि अपने नित्य और नैमित्तिक काम में दिन रात उलझे रहने के सिवाय यदि वह जरा सा भी अपने जी को किसी तरफ लगाते तो उनके सामने खी के कर्म, उसकी दृष्टि इत्यादि बातें आ खड़ी होती थीं। वह अपने भाव को बहुतेरा छिपाते किंतु जो बात मन में होती है मुख उसकी चुगली खा दिया करता है। लोगों से न मिलने जुलने का एक यही प्रधान कारण था।

अस्तु, अब उक्त प्रश्नों से उनके अंतःकरण को देखा या । अब देवदर्शनों में, काम काज में वह लोगों से मिलने लगे । जिनसे राह में भेट होने पर वह कतरा जाया करते थे उनसे खड़े होकर बातचीत करने लगे । कान लगा लगाकर इधर उधर की बातें सुनने लगे । परिणाम इसका यह हुआ कि इनके प्रश्नों का इन्हें यथार्थ उत्तर मिल गया । इन्होंने निश्चय कर लिया कि बदनासी घटनेवालों की बदनासी है । लोग उन्हीं के जीवन पर धूकते हैं, यहाँ तक कि जो तार देनेवाला था तथा जिसने पुलिस में रिपोर्ट की थी उन्हें कोई भला आदमी पास बैठने नहीं देता है । जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ से दुतकारे जाते हैं । यदि यह घटना न होती तो शायद लोगों के मन पर कांतानाश की, उनकी सुखदा की बुराई बनी रहती किंतु कपड़े की मैल जैसे धोवी की भट्ठो में पड़कर उचाले जाने से निकल जाती है वैसे हो इस घटना ने दंपती के चरित्र को स्वच्छ कर दिया, उज्ज्वल कर डाला, यहाँ तक कि इस घर की सज्जनता देखकर जो लोग इनकी बदनासी उड़ाने में थे वे अब पछताते हैं, कितने हो लज्जा के मारे इन्हें मुँह नहीं दिखाते और कितने ही इनसे नमा माँगने को तैयार हैं ।

लोगों का यह ढंग देखकर दो तीन आदमियों ने इनको यहाँ तक सलाह दी कि “ऐसे बदमाशों पर नालिश ठोककर उन्हें सजा दिलानी चाहिए ताकि आगे से किसी भले आदमी की इज्जत बिगाड़ने की किसी को हिम्मत न हो ।” दस बीस

आदमी अदालत में जाकर गंगा उठाने को तैयार थे और सबसे बढ़कर पुलिम का रोजनामचा इनके लिये पक्का सुवृत था किंतु यह सलाह इन्हें पसंद न आई। इन्होंने उन लोगों से खुले शब्दों में कह दिया—

“नहीं जी ! यह सलाह अच्छी नहीं। उस दिन मैंने उस आदमी का मारा, इसी पर मैं पछताता हूँ। भाई साहब भी मुझसे नाराज होंगे। जैसे के साथ वैसा वर्ताव करने में हमारी शोभा नहीं। जिन्होंने बुरा किया है उन्हें परमेश्वर अवश्य दंड देगा। देख लेना। और उन्हें दंड भी न मिले तो क्या ? परमेश्वर उन पर दया करे। यदि विच्छू आपने डंक मारने की आदत न छोड़े, बेशक वह नहीं छाड़ेगा क्योंकि उसका यह स्वभाव ही है, तो हम उसकी रक्षा करने का काम क्यों छोड़े ? हिंदू उसी उदारता से, पेसी ही दयादृष्टि से सांप विच्छू को नहीं मारते और न मारने देते हैं। एक बार एक महाशय जलाशय के किनारे बैठे बैठे संध्या कर रहे थे। एका-एक उत्तरी दृष्टि जल में पड़े हुए विच्छू पर पड़ी। उन्होंने जिस हाथ में लेकर उसे निकाला था वाहर आते ही उसने उसी पर डंक मारा। डंक मारते ही उनके हाथ से वह जल में गिर गया फिर उन्होंने दया करके उसे निकाला किंतु फिर भी डंक मारे बिना उससे न रहा गया। यों उन्होंने जैसे उसे निकालना न छोड़ा वैसे उसने भी उन्हें डंक मारना न छोड़ा। जब ऐसे ऐसे उदाहरण हमारे सामने विद्यमान हैं, जब घोर

कलिकाल में भी हम ऐसी ऐसी अनेक घटनाएँ देखा करते हैं तब हमें चाहिए कि हम सज्जनता का, भलाई का और ज्ञान करने का अनुकरण करें । ”

कांतानाथ की इन वारों ने उन लोगों का हृदय पिघला दिया । चारों ओर से बाहर वाही का डंका बजने लगा, शाबाशी को आवाजें आने लगीं और धन्यवाद की ‘बौछारे’ आरंभ हो गईं । उनकी दयालुता, उनकी ज्ञानशीलता और उनका उदार हृदय देखकर सचमुच ही जो लोग उनकी बदनामी करने में आगुआ थे वे पछताए । उनके मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने कांतानाथ के चरणों में सिर आ रखवा । “तुम्हारा कुछ दोष नहीं । ममय पर ऐसी चूक बढ़ो बढ़ो से हो पड़ती है । दोष हमारे नसीब का है । मैं तुम्हारा समस्त अपराध ज्ञाना करता हूँ । पाप का प्रायशिच्छत पश्चात्ताप ही है । इससे बढ़कर कोई नहीं, सो तुम अपने अंतःकरण से कर रहे हो । तथापि यदि हो सके, हो ही सकेगा, तो सबा लक्ष गायत्री का जप करना । इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं ।” यह कहकर जब उन दोनों को बिदा करने लगे तब इनकी पड़ोसिन बुढ़िया ने, जो कुँए की आवाज का डंका पीटनेवाली थी, इनके पैरों पड़कर कहा—

“आप चाहे मारे” चाहे निवाजें । आपका मुझसे बहुत बड़ा कुसूर हो गया । मैं ही इस भगड़े की जड़ हूँ । मैंने मशुरिया के बहकाने से, उससे एक रूपया पाने के लालच आ० हि०—५

में आकर, भूठमूठ जाहिर कर दिया । मैं न तो उस रात  
अपने भक्त न में सोई और न मैंने कोई धमाका सुना । नाराज  
होते होते चाहे ये दोनों मेरी जान ही क्यों न ले डाले, आगं  
पीछे सुभं मरना ही है, अब जीकर कहाँ तक चक्की पीसती  
रहूँगी, परंतु सच कहती हूँ । उस राँड़ मथुरिया का इन  
दोनों में ऐसा ही वास्ता है । मैं क्या कहूँ ? आपकी बदनामी  
इन तीनों की गोष्ठी से हुई है । भूठ मानों तो इनसे पूछ देखो ।’  
इस पर उन दोनों ने अपना अपराध स्वीकर किया । काँता-  
नाथ ने उनका अपराध अवश्य ज्ञाना कर दिया परंतु विरा-  
दरीवालों ने उनको, और बुढ़िया को जाति बाहर कर दिया ।  
इसके अनंतर ज्य से, कोढ़ से, अन्न बिना तरस तरसकर  
उन लोगों की मौत हुई सो लिखकर किसा बढ़ाने की  
आवश्यकता नहीं ।

---

## प्रकरण—५३

### दीनवंधु के दर्शन

उचासवे प्रकरण के अनेक प्राणेश्वर की धाराप्रवाह वक्तृता सुनकर यदि प्राणप्यारी को संतोष हो गया हो तो अच्छी बात है, हो जाने दीजिए। पत्नी को प्रसन्न रखना पति का प्रबान कर्तव्य है किंतु पंडित जी अब भी बातें करते करते बीच बीच में, कभी कभी इक जाते हैं, मौन ब्रत धारण कर लेते हैं और अपने कमल नयनों से दो चार आँसू गिराकर तब अद्व स्फुट शब्दों से—“मगवान् की इच्छा ! ईश्वर की लीला !” कहकर फिर गौड़बोले से बातों में प्रवृत्त हो जाते हैं। उनकी ऐसी दशा धंटे दो धंटे रही हो तब तो कोई बात नहीं किंतु श्री जगदीशपुरी से चले एक दिन गुजरा, एक रात गुजरी और फिर दूसरा दिन गुजरने का आया। केवल गौड़बोले से संभाषण होने ही पर यदि कोई मान ले कि उनके विद्वत्ता मिट गई तो माननेवाले को अधिकार है किंतु उनके हृदय की वास्तविक विद्वत्ता अभी ज्यों की त्यों है। यदि कंजूस के धन की तरह पंडित जी अपने मन की बात मन में न छिपाते, साथियों के सामने प्रकाशित कर देते तो उनके मन का बोझा थोड़ा बहुत हल्का भी हो जाता क्योंकि दुःख दूसरों को सुनाने में घटता और सुख बढ़ता है। औरों के

आगे प्रकट कर देने से गन के काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार दुःख, सुख, शोक, यव इत्यादि शांत होते हैं ।

कुछ भी हो किन पंडित प्रियानाथ यों ही करते करते अपने साथियों सहित जब मुगलसराय रेशन पर पहुँचे तब एकाएक इनकी हाथ पंडित दोनबंधु पर पड़ी । गाड़ी ठहरते ही पंडित जी उत्तर कर लपके हुए उनके पास गए । पहुँचकर इन्होंने उनके चरणों में सिर रख दिया । समस्त साथियों ने पारी पारी से उनको प्रणाम किया । दोनबंधु ने प्रियानाथ को उठाकर अपनी छाती से लगाया और पंडितजी के “आप यहाँ कैसे ?” इस प्रश्न के उत्तर में “इसलिये” कहकर पंडित दोनबंधु ने इनके हाथ में तार का लिफाफा दिया । इन्होंने खोलकर उसे एक बार पढ़ा, दूसरी बार पढ़ा और तब भोला के हाथ प्रियंवदा के हाथ में पहुँचाते हुए कहा—

“हे भगवन् ! तुमने बड़ी कृपा की !, हे दयासागर ! तुमने बचाया ! हे परमेश्वर ! अब जी में जी आया ! आपकी लीला अपार है । अब मुझे बोध हुआ कि आपकी इच्छा हमें दक्षिण यात्रा कराने की नहीं थी । अब सिद्ध हो गया कि आप सचमुच प्राणी मात्र को नटमर्केट की तरह नचाते हैं । आपने गीता में धुनधर अर्जुन को विराट् स्वरूप के दर्शन कराकर दिखला दिया है कि हम सब निमित्त मात्र हैं । होता वही है जो आपको मंजूर होता है । यह भी एक आफत थी । विचारे को निरपराध कष उठाना पड़ा । खैर, अच्छा हुआ ।

( ६६ )

जलदी बला टल गई । भगवान्, तेरा धन्यवाद ! रोम रोम से धन्यवाद !”

ऐसे पंडित जी ने, पंडितायिन ने तार पढ़कर अपना संतोष कर लिया । पंडित दीनबंधु से दोनों सार पढ़वाकर उनका संदेह निवृत्त कर दिया किंतु गौड़बोले, भगवान्-दास, बुद्धिया, गोपीवल्लभ और भोला क्या जाने कि तार में क्या है ? पहिले तार में क्या लिखा था सो पाठक पचासवें प्रकरण में पढ़ चुके हैं । दूसरे तार का भावार्थ यों था—

“बदमाशों ने भूठा इलजाम लगाने में तो कसर नहीं रखी थी । एक मेरे नाम पर आपको भूठा तार दे आया और दूसरे ने पुलिस में भूठी रिपोर्ट की । पुलिस आई भी किंतु जब मामले की कुछ त्रुनियाद ही नहीं तो अपना सा मुँह लिए लौट गई । हम दोनों प्रसन्न हैं । लोग उन दोनों पर मुकदमा चलाने की सलाह देते थे किंतु मेरी इच्छा नहीं है । मेरे को क्या मारना ? आप ही मर जायेंगे, जेठ चलंते बाट ।”

सब लोगों को तार सुनाकर पंडित जी बोले — “शावाश लड़के ! बाहु री चमाशीलता ! सज्जनों को ऐसा ही चाहिए । परंतु क्यों महाराज ! आपको यह तार कैसे मिला ? और आपको यह क्या मालूम कि मैं इस ट्रेन से आनेवाला हूँ ?”

“इसका यश पुरी के पंडा शितिकंठ जी को है । बोध होता है कि आपके रवाना होने के अनंतर उनको कांता भैया का तार मिला । तार की बात ठहरो । उन्होंने खोलकर पढ़

लिया । और आपको पास इस घबर को पहुँचाना विशेष आवश्यक समझकर उन्होंने सुझे तार दिया । देख लो ! तार उनका भेजा हुआ मेरे नाम है ।”

“हँ बेशक ! फिर ?”

“जिस समय तार मिला, मैं आप ही के नाम घर के पते पर चिट्ठी लिखकर लौटरवक्स में डालने जा रहा था । रेल का टाइम निकट देखकर इस चिट्ठी को जैब में डालता हुआ काशी स्टेशन पर पहुँचा । टाइमटेबुल में समय का हिसाब मिलाकर मैंने अनुमान कर लिया कि आप इस गाड़ी से आने-वाले हैं अथवा पुरी से चलकर जलदी से जलदी इस समय यहाँ पहुँच सकते हैं ।”

“अच्छा महाराज, आपको बहुत परिश्रम हुआ । आप सुझे उपकार के बोझ से दबा रहे हैं । जब आप पिता हैं तब मैं आपके कहाँ तक गुण गान कर सकता हूँ ।” यों कहते हुए फिर प्रियानाथ ने दीनबंधु के पैर पकड़ लिए । चिट्ठी में क्या था सो वह इनसे न कहने पाए । गाड़ी रवाना होने की एकदो और तीन घंटियाँ हो गईं । आगे जाने के लिये इन लोगों को यहाँ गाड़ी बदलनी थी । बस चट पट वे गाड़ी में सवार हुए और उनके अनुग्रह से दबे हुए उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँ से चल दिए । यहाँ यह भी लिख देने की आवश्यकता है कि पंडित पंडितायिन ने एक एक गिरो पंडित दीनबंधु को भेट की थी किंतु उन्होंने ली नहीं । “ऐसा कभी नहीं हो सकता ।”

कहते हुए वह भी नजर भर प्रेम के साथ उन पर दृष्टि डालते हुए उसी समय जिस गाड़ी से ये लोग उतरे थे उसी में सवार होकर बनारस चले गए । पंडित दीनबंधु के पत्र को प्रियानाथ ने पढ़कर ‘जैसा करता है वैसा पाता है ।’ कहते हुए जँगले में हाथ डालकर दूसरे कंपार्टमेंट में प्रियंवदा की ओर फेंक दिया और पत्र को पढ़कर कुछ मुस्कुराती हुई वह भी उसे अपनी जेब में डालकर चुप हो गई ।

इससे पाठकों ने समझ लिया होगा कि इस बार पंडित जी जुदे दर्जे में थे और पंडितायिन जुदे में । केवल इतना ही क्यों, गाड़ी में भीड़ की कसामसी से हर एक आदमी को अलग अलग बैठना पड़ा था । इस तरह वहाँ से रवाना होकर आगे तक पहुँचने में इस पार्टी ने अलग अलग कंपार्टमेंट में बैठकर जो जो देखा उसे पृथक् पृथक् लिखकर विस्तार करने की आवश्यकता नहीं । तीसरे दर्जे में सवार होकर अधिक भीड़ के समय जो अनुभव होता है उसे सब जानते हैं । गत प्रकरणों में समय समय पर थोड़ा बहुत लिखा भी गया है । हाँ देखना यह है कि गाड़ी से उतरने पर प्रियंवदा प्राणप्यारे से क्या रिपोर्ट करे । खैर, वर पहुँचने की जल्दी में अयोध्या न जाने का दुःख सबको था ।

---

## प्रकाश—५४

### जनानो गाड़ी

दूसरे कंपार्टमेंट में, जिसमें प्रियंवदा खबार हुई थी, आठ दस लियाँ और थीं। उनके कपड़े लत्ते से, उनकी रहन सहन से और उनके बर्ताव से विदित होता था कि वे किसी भले घर की बहू-बेटियाँ हैं। यदि ऐसा न होता तो पंडित जी कुछ न कुछ और उपाय करते क्योंकि ‘दूस का जला भठे को भी फूँक फूँककर पिया करता है’। प्रियानाथ प्रियंवदा के उन महिलाओं में हिल मिलकर बैठ जाने से कुछ निश्चित अवश्य हुए किंतु प्रत्येक स्टेशन पर उतार उतारकर उसकी खबर लेते रहे और रात भर इसी खटक से उन्होंने निद्रा के नाम एक पलक तक न मारी। गाड़ी में सवार होने के अनंतर आपस में जाग पहचान होकर इधर उधर की गप्पें होने लगीं। जहाँ चार औरतें इकट्ठी होती हैं वहाँ या तो आपस में कलह होती है, या औरों की निदा होती है और जो ये दोनों बातें न हुईं और सब की सब जवान जमर की हुईं तो अपने अपने शौहर की, अपने अपने बाल बच्चों की अथवा अपने अपने धन दौलत की, रूप लावपय की बातें होती हैं।

प्रियंवदा को इस प्रकार के निरर्थक गपोंडे जैसे पसंद नहीं थे वैसे एक और ललना भी इन लियों की ऐसी ऐसी

बातों से मन ही मन कुद्रती थी । उसकी सत्रह अठारह वर्ष की जवान उमर, धन्द्या मनोहर गेहूआ रंग, गोल और सुंदर चेहरा, खंजन की सी लंबी लंबी आँखें, सिर पर मेमों का सा जूँड़ा, रेशमी पूलदार साड़ी और पैरों में काले मेंजों के ऊपर काली गुच्छेदार जरा जरा सी एड़ों की बढ़िया गुर्जिथाँ थीं । उसके एक हाथ में छाता और दूसरे में एक अँगरेजी किताब के सिवाय आँखों पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा चढ़ा हुआ था । हाथों में बिलायती सोने की मरोड़ादार, पतली पतली सी दो दो चूड़ियाँ और दहने हाथ की अनामिका अँगुली में वैसे ही सोने की एक अँगूठी थी । प्रियवदा को बहुत ही घूरकर देखने पर विदित हुआ कि उस पर लैटिन भाषा का एक शब्द मुदा हुआ था जिसका अर्थ है “भूल न जाइए ।” वह ललना बार बार उस अँगूठी को देख देखकर मुस्कुराती जाती थी और कहीं अँगुली में से वह गिर न जावे इसलिए सँभालती और अँगुली ही में उसे बुमाती जाती थी । दोनों ही दोनों की ओर देख देखकर न भालूम क्या विचार करने लगीं । चाहे पुरुष हो या लड़ी हो किसी नवीन व्यक्ति को जब कोई देखता है तब उसके मन में कुछ न कुछ भाव अवश्य पैदा हो उठता है । पुरुष पुरुष को देखे तब भाव भिन्न, पुरुष लड़ी को देखे तब भाव अलग किंतु दूसरी लड़ी को देखने पर एक ललना के मन में जो भावनाएँ उत्पन्न होती हैं वे विलक्षण हैं । उनकी आह नारी-हृष्ण के सिवाय किसी को नहीं मिल सकती । और

रमणी-हृदय जैसे गहन होता है वैसे ही दूसरे का मन पहचान लेने की शक्ति भी उसमें अनुलनीय होती है। सर्व साधारण यदि अटकल लगाना चाहें तो अधिक से अधिक वही परिणाम निकाल सकते हैं कि जैसे एक युवा पुरुष किसी मुंदरी युवती को देखकर काम-पीड़ित होता है वैसे ही जवान औरत सुंदर सुडौल पुरुष को देखकर होती होगी। अथवा एक युवती दूसरी युवती को देखकर डाह कर सकती है, घृणा कर सकती है और इन्हा कर सकती है। कितु नहीं ! यह फैसला बहुत ही भदा है। इस फैसले में ओछेपन की इतिश्री है। चाहे कोई खी हो अथवा पुरुष हो, यदि उसने थोड़े ग्रतिवाद के सिवाय उस व्यक्ति का चरित्र न लख लिया तो किया ही क्या ? दोनों ने दोनों को नख से शिख तक देख भालकर एक दूसरे के लिये क्या फैसला दिया सो मैं नहीं बतला सकता अथवा यों कहा कि मेरा पुरुष-हृदय दोनों के नारी-हृदयों का पता पाने ही में असमर्थ है। अब पाठक पाठिकाओं को अधिकार है कि दोनों के परस्पर संभापण से आह पा लें।

अस्तु, जब योंही दोनों को मौन ब्रत साथे दो तीन स्टेशन निकल गए तब प्रियंवदा ने कहा—

“बहन, आप तो पढ़ी लिखी मालूम होती हैं। कक्षाचित् आपने अँगरेजी की उच्च शिक्षा पाई है ? क्यों बी० ए० ?”

“हैं ? हाँ ! योंही ! ( कुछ लजाकर ) इस बार बी० ए० की परीक्षा दूँगी !”

“बाल बच्चा क्या है ?”

“अभी से ? अभी तो मेरी शादी भी नहीं हुई ।”

“अच्छा मैं समझो ! ज़मा करना ! तब ही आप वार वार अपने प्यारे की यादगार निरखकर मुस्कुरा रही हैं । वहन, उम्म भले ही बुरा मानो । मेरा स्वभाव सुँहफट है । इधर रेनाल्ड की प्रेम कहानियाँ पढ़ना, प्राणप्यारे की अँगूठी धारणा करना, उसे बारंबार निरखना और उधर अब तक शादी न करना ! उम्म ही सोचो । यह स्वतंत्रता कहाँ तक अच्छी है ? यही विवाह के पहले गौना है । आग और वी पास रहकर न पिघले यह हो नहीं सकता और एकांत में मिलं बिना प्रेम परीक्षा काहे की ?”

“अच्छा तो (कुछ भेंपकर) आपका प्रयोजन यह है कि यह स्वतंत्रता तो बुरी और दिन रात वर के जेलखाने में जेवर की बेड़ियाँ डाले चक्की चूल्हे से माथा मारते रहना अच्छा है । हमारे देश में वास्तव में खी जाति पर बड़ा अत्याचार हो रहा है । वे या तो केवल बच्चा देने के काम की हैं अथवा अपने आदमी की गुलामी करने के । जिस देश में पति की ज़ूठन खाना ही धर्म, उसकी लाते खाना ही प्रेम, जहाँ पढ़ने लिखने का द्वार बंद और जहाँ अपने आदमी को पहचानने से पहले ही गुड़िया गुह्ये की तरह शादी हो जाती है, जहाँ विधवा विवाह घोर पाप माना जाता है वह देश कभी नहीं संभलेगा, दिन दिन गिरता ही जायगा और इसके

( ७६ )

पाप का दोषका हमारे शाश्वकारों पर है, हमारे बूढ़े सुराईदों पर है। और देश का अवश्य ही दुर्भाग्य समझना चाहिए कि हाल की गई पौष्ट में जो आदमी पैदा होते हैं वे उनसे भी गए चीते। खेद है ! अफसोस है ! अनर्थ है ! राम राम !”

“हाँ ! ठीक है ! आपके कर्मनि का मतलब मैं अभी तक यही समझता हूँ, मैंने यही परिणाम निकाला है कि आप खियां को पुरुषों के समान औंगरेजी की उच्च शिक्षा दिलाना पसंद करती हैं, पर्दे का पर्दा तोड़कर उन्हें पुरुषों में संयुक्त कर देना, अपने लिये इच्छा वर तलाश कर लेने की छूट देना, जी पुरुष का परस्पर समान बतौर, नहीं नहीं (अपना कान पकड़-कर) मैं भूल गई थी, पुरुषों से भी अधिक अधिकार देना, और एक पति भर जाय तब दूसरा और दूसरा भर जाय तो तीसरा कर लेने की स्वतंत्रता देना चाहती हैं। क्यों यही ना ? परंतु एक बात कहना आप भूल गईं । यदि पति नालायक निकले तो व्याह का ठेका लोड़कर दूसरा तीसरा कर लेना ।”

“वेशक ! वास्तव में ! अवश्य ! निःसंदेह !”

“परंतु आपके और मेरे विचारों में धरती आकाश का सा अंतर है। खी-शिक्षा से मेरा विरोध नहीं है बल्कि मैं उमकी बहुत आवश्यकता समझती हूँ। हाँ ! उसके प्रकारों में भेद है और सो भी बहुत भारी । आप उनको औंगरेजी की उच्च शिक्षा दिलाकर पुरुषों के समान बनाना चाहती हैं किंतु पुरुषों को आजकल जो शिक्षा मिल रही है वह जब उन्हीं

को पढ़ लिखकर बीस वर्ष खराव कर देने पर भी, हजारों रुपए नष्ट कर खालने पर भी और “नई जवानी माँझा ढोला” की कहावत के अनुसार स्वास्थ्य का खुन हो जाने पर भी कौड़ी काम का नहीं रखती तब उस शिक्षा से खियों का सचेनाश समझो। ऐसी ऊँची शिक्षा पा लेने पर भी न तो उन्हें धर्म का किंचत् ज्ञान होता है और न दुनियाद्वारा का। भले ही वे एक कारीगर के बेटे पोते हों किंतु उन्हें पढ़ लिख-कर बसूला पकड़ने में शर्ष आती है और जो कहीं किसी के कहने सुनने से अथवा पेट की आग ने जोर मारकर उसे उठवाया भी तो दस मिनट में वे हाँप उठेंग। यदि वे दूकान खालने का इरादा करते हैं तो रुपया चाहिए और उनका वाप उनकी पढ़ाई में अनाप सनाप खर्च करके कर्जदार बन गया है। इसलिये पढ़ने लिखने का फल यही होता है कि वे बीस पचास रुपए की नौकरी के लिये दौड़ जाते हैं, अफसर की लातें खाते हैं, गालियाँ खाते हैं और जन्म भर कुएँ के मेंढक की तरह “चलते हैं लेकिन ठौर के ठौर !” वहस इसलिये वे अवश्य “पहाड़ खोदकर चूहा” निकालते हैं और इसलिये कि पास का परवाना लेकर जब वे किसी आफिस में उम्मेदवारी करते हैं तब हो वर्ष तक उन्हें फिर काम का ककड़रा सीखना पड़ता है।”

‘‘हाँ मैंने मान लिया कि पुरुषों की शिक्षा-प्रणाली अच्छी नहीं है परंतु खियों को कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए ?’’

“आप जिस तरह की शिक्षा पा रही हैं, उसकीजिए, वह आपको बनाती नहीं विगड़ रही है। अच्छा बतलाइए आप क्या क्या खाना बनाना जानती हैं? यदि आवश्यकता आ पड़े तो शायद आपको बाजार से पूरी या बिस्कुट लेकर ही गुजारा करना पड़े। अलवत्ता आप कह सकती हैं कि एक अच्छा बाबूर्चा या रसोइयाँ नौकर रख लेंगी परंतु आपके पास इतना रुपया ही न हुआ तो फिर ?”

“वेशक ! यह तो त्रुटि ही है। न मैंने कभी माता के कहने पर कान दिया और न अभी तक किताबें रटने के आगे उसे सीखने का समय मिला। मदरसे में तो इसका वास्तव क्या ? किताबें देख देखकर शायद कुछ बना लेने की हिम्मत भी करूँ तो चूलहा फूँकते फूँकते धुएँ के मारे आँखें फूट जायें। पढ़ते पढ़ते आँखें पहले ही कमज़ोर पड़ गई हैं ! अच्छा अब सीखने का प्रथम कदम्बी !”

“अच्छी बात है परंतु कपड़ा सीना ? रँगना ? और कहाँ तक कहूँ, गृहस्थी के सैकड़ों काम हैं ! उन्हें लड़कियाँ घर में गुड़िया खेलते सामय सीख लिया करसी हैं। उन पर उस समय बोझा बिलकुल नहीं पड़ता। अब आप जिस समय शादी करेंगी, बाल बच्चे होंगे तब आपको बड़ी मुश्किल पड़ेगी ।”

“हाँ मैंने यह भी बात मान ली कि पढ़ी लिखी खियाँ घर के धंधे से बिलकुल कोरी रहती हैं। उन्हें न तो इन-

बतों का अभ्यास होता है और न सामर्थ्य ! और इस कारण उन्हें ऐसी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए जिससे वे पहले घर गृहस्थी के उपयोगी चीजें बनाने सुधारने में होशियार हों और तब मौज शौक की चीजें सिखाई जायें । परंतु पुस्तके "पुस्तके" किस भाषा में, किम तरह की, कौन कौन सी ?

"अँगरेजी पढ़ने से मुझे शत्रुता नहीं है । मैं भी जैसुराज में आकर अपने उनके पास थोड़ा बहुत सीख गई हूँ किंतु ऐसा नहीं है कि अँगरेजी के बिना ज्ञान हजम ही न हो । देश भाषा का अच्छा ज्ञान उन्हें अवश्य होना चाहिए । केवल इतना ही नहीं जिससे चिट्ठी पत्री लिख पढ़ सकें । शियों के उपयोगी संकृत के, अँगरेजी के और फारसी अरबी के जो जो अच्छे अंथ मिल सके" उनका हिंदी उल्था, अच्छी अच्छी पुस्तकों के आधार पर अपने हाँग के अनुसार तैयार किए हुए उपयोगी अंथ हों और यदि अवकाश मिले तो अपना मन प्रसन्न करने अथवा पति के आमोद प्रमोद के लिये कुछ गायन कविता । किंतु आपके इस रेनाल्ड के नावेल की तरह ऐसी कोई भी पोथी उनके हाथ में न पढ़नी चाहिए जिससे उनकी व्यभिचार में प्रवृत्ति हो । संक्षेप यह कि उन्हें ऐसी ऐसी पुस्तके" पढ़ानी चाहिएँ जिनसे उनकी परमेश्वर में अधिचलभक्ति बढ़े, वह माता पिता मास ससुर और शिष्ट जनों का आदर करना सीखे", पति को अपना इष्टदेव मानकर उसकी सेवा करें, पति के सिवाय पर पुरुष को, बाप भाई और मामा

चाचा तक को निहारकर, धाँखं मिलाकर न देखे और न कभी अपनी लज्जा का बंधन तोड़कर पर पुरुष के सामने हों । ”

“अच्छा ! पुरतक संबंधी शिक्षा तो ठीक ही है । अँगरेजी न पढ़ने से भी कुछ हानि नहीं । अँगरेजी जब पराए देश की और क्षिट भाषा है तब उसे पढ़ने से जो ज्ञान दस वर्ष में हो सकता है उसके लिये हिंदी में दो वर्ष धृत हैं । परंतु क्या पति की वही गुलामी, पर्दे का वही जैलखाना ? नहीं जीजी ! ऐसा न कहा ! ”

“पर्दे से मेरा प्रयोजन यह नहीं है कि घर की चार-दीवारी के भीतर स्थियाँ कैद रखी जायें, बाहर की कभी उन्हें हवा तक न लांगे । जहाँ सब स्थियाँ ही स्थियाँ हों, जहाँ स्थियाँ भी नेक चलन इकट्ठो हुई हों और जहाँ पुरुषों की दृष्टि न पड़ती हो ऐसे खो-समाज में जाना मैं बुरा नहीं समझती और अद्वक के साथ ढँकी गाड़ी में बैठकर बाहर की हवा खाने की भी आवश्यकता होती है परंतु स्थियों का लज्जा ही प्रधान भूपण है और पर्दाँ ही उसकी रक्षा करनेवाला है, इसलिये पर्दे को तोड़ना अच्छा नहीं । वहिक मेरी राय तो यहाँ तक है कि पर्दे के भीतर बदलन औरतों तक को न आने देना चाहिए । मेरी देवरानी हाल ही में इससे कष्ट उठा चुकी है । ”

“खैर यह भी मान लिया परंतु पति की गुलामी अब हमसे नहीं हो सकती ! सैकड़ों वर्षों से गुलामी करते करते

( ८१ )

पेट भर गया । जब परमेश्वर ने आदमी और औरत को समान पैदा किया है तब पुरुषों के समान हमें स्वतंत्रता क्यों न मिले ? ”

“नहीं ! समान पैदा नहीं किया । दोनों की बनावट में अंतर, दोनों के काम में अंतर और दोनों के विचार में अंतर है । यदि समान ही पैदा किया है तो शादी होने के बाद अपने शौहर से काम की बदली कर लेनी चाहिए । उनसे कह देना कि नारियों ने युआँ तक गर्भ धारण करने की ओर यातना भोग ली अब नौ महीने तक पेट में बालक रखने की मेहनत तुम उठाओ । अब हम तुम्हारे बदले बाहर जाकर कमाई का काम करेंगी । ”

“नहीं ! ( लजाकर ) ऐसा क्योंकर हो सकता है ? प्रकृति के विरुद्ध ! ”

“जब यह नहीं हो सकता तब बराबरी भी नहीं हो सकती ! मेरी समझ में संसार में स्वतंत्र कोई नहीं है । प्रजा राजा की परतंत्र है, राजा परमेश्वर का परतंत्र है, लियाँ पुरुषों की परतंत्र हैं और पुरुष लियों के परतंत्र हैं, यहाँ तक कि एक व्यक्ति महाराजाधिराज होने पर भी खिदमतगारों का, नाई का, धोबी का और मेहतरों का परतंत्र है । और जो आपके से विचारवाली लियाँ परतंत्रता की बेड़ी तोड़कर स्वतंत्र बनना चाहती हैं वे पति का, घरवालों का, समाज का और राजा का दबाव न भानने से कामदेव की परतंत्र बतकर व्यभिचार करती हैं, क्रोध की परतंत्र होकर पाप करती हैं

और बस इसी तरह समझ लीजिए । विलायत का देखो । समान स्वत्व माँगने में वहाँ की लियों ने कितना ऊधम मचा रखा है । वे मकान जला देती हैं, पथर फेंकती हैं, हमले करती हैं और न मालूम क्या क्या कर छालती हैं ।”

“वास्तव में ऐसी स्वतंत्रता किसी काम की नहीं परंतु पति की गुलामी भी अच्छी नहीं है ।”

“हाँ ! ठीक है परंतु हमारे देश में भले घर की नारियाँ पति की गुलाम नहीं होतीं, उनकी अद्वागिनी होती हैं । जिन जातें में ठहरौनी के लालच से, रूपया कम पाकर अथवा पति के दुराचार से गाय भैंस का सा वर्ताव स्थियों के माथ किया जाता है वह अवश्य निदनीय है क्योंकि हमारे धर्म-शास्त्रों का ही यह सिद्धांत है कि खो पति को और पति खो को प्रसन्न रखें । जिस घर में लियों का आहर है वहाँ देवता रमण करते हैं, वहाँ कल्याण का अवश्य निवास है । परंतु इससे लियों की स्वतंत्रता मत समझ बैठना । शरीर में दहना और बाँधा हाथ समान है किंतु अनादि काल से जो काम जिसके सिपुर्द है उसे वही करना चाहिए । जरा एक दिन बायें हाथ से खाना और दहना हाथ पानी लेने के काम में लगा देना, कैसा होगा ? आप पति को “ब्राइड ग्रूम”—साईंस न बनाइए और न उसे “हस्बैंड” खेति-हर । आप उसकी अद्वागिनी बनकर उसे जन्म जन्मांतर के लिये साथी बना लीजिए । आप जब उसके नाम से पुकारी जायेंगी तब आप उसकी “बेटर हाफ—उत्तमाद्वा” हो चुकीं ।”

“राम राम ! आपने तो बड़ी गंद्धी बात कह डाली ।”

“वस दंपती के एक शरीर का मर्द दहना अंग और औरत बाँया अंग है । दोनों अपना अपना काम आप आप करते हैं किंतु दूसरे को जब मदद की आवश्यकता हो तब एक तैयार !”

“अच्छा ! यह भी समझ लिया । आपके विचार ठीक ही हैं । और यह तब ही हो सकता है जब कि पति में अगाध भक्ति हो, अनन्यता हो । पति भी पत्री को अपना शरीर समझे । जिनमें स्वतंत्रता का भूत सवार हो गया है वे अवश्य पति का आदर नहीं करती हैं । परंतु विवाह के विषय में आपकी क्या राय है ?”

“इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं आपको एक बात और सुझा देती हूँ । यदि आपको सचमुच ऐसी गृहिणी बनना हो तो भारतवर्ष के इतिहास पुराणों का अवलोकन कीजिए । ऐसी रमणियों के चरित्रों का संग्रह “सतीचरित्र संग्रह” में देखिए । “आदर्श दंपती,” “हिंदू गृहस्थ,” “बिंगड़े का सुधार,” “विपक्षि की कसौटी” और “स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी” आदि अनेक प्रथा आपको मिलेंगे । रेनालड के नावेलों को फेंक दोजिए । ये आपके चरित्र को बिगाढ़नेवाले हैं ।”

“बेशक ! अच्छा विवाह ?”

“हाँ ! इस विषय में मेरी राय यह है कि स्त्री जाति कभी कुँवारी रहकर अपने सतीत्व का पालन नहीं कर सकती ।

थोड़े प्रतिवाद चाहें निकल भो आवें परंतु पुरुष बिना उसका एक दिन भी गुजारा नहीं और जो इस बात का दम भरती हैं उन्हीं में बहुतेरी ऐसी निकलेंगी जिनके लिये मैं क्या कहूँ ? हाँ यह जुहो बात है कि दूसरे की जाल बनकर प्रसव वेदना के भय से विवाह न किया किंतु मान लीजिए कि जो एक की जाल नहीं बनना चाहतीं वे बहुतों की बन सकती हैं । इनमें प्रतिवाद भी हैं किंतु साधारण यही । ऐसा न करनेवाली कितनी ही आपको भ्रूणहत्या करनेवाली मिलेंगी और उन्हें गर्भ न रहने की दवा भी टटोलनी पड़े तो आशचर्य नहीं । संभव है कि किसी दिन यहाँ भी ऐसा अनाथालय खोलना पड़े जिसमें व्यभिचारिणी स्थियाँ जाकर चुपचाप बच्चा जन आवें । ऐसी खसंत्रता को सार्थांग प्रणाम । ब्रह्मचर्य का पालन कर आजीवन अथवा अधिक वय तक कुमारिकाएँ रहनेवाली बास्तव में पूजनीय हैं किंतु इस कलिकाल में यह एकदम असंभव, महा कठिन है । ”

“अच्छा ! परंतु सज्जा सुख तो इसी में है कि अपनी इच्छा के अनुसार अपने लिये अनुकूल, सुदृढ़, नीरोग, विद्राव और सज्जन पति तलाश करने का भार स्थियों पर रहे और यह तब ही हो सकता है जब पक्की उमर में उनकी शादी की जाय । ”

“बास्तव में सज्जा सुख ऐसा गुणवान् पति मिलने ही में है परंतु अनुभवशून्य युवतियों पर पति हूँड़ने का भार

डालना नितांत भूल है । सरासर पाप है । खियाँ पढ़ते पढ़ते यदि पचीस वर्ष भी कुँवारेपन में क्यों न निकाल डालें कितु उनके माता पिता को जितना अनुभव है उतना क्या उससे आधा चौथाई भी उनको नहीं हो सकता । वे जैसे अच्छे घराने का, अच्छा विद्वान् और अच्छे शील स्वभाववाला वर तलाश करके उसकी जैसी जाँच कर सकते हैं वैसी जाँच युवती कुमारिका से नहीं हो सकती और इसी लिये छठे महीने तलाक देने के लिये अदालत में दौड़े जाना पड़ता है ।”

“खैर ! यह भी मान लिया किंतु इच्छण देश में मुरलियों के नाम से कितनी खियाँ आजन्म कुँवारी रहती हैं । वे मंदिरों को भेड़ बकरियों की तरह भेंट की जाती हैं । उनका क्या यह धर्म है ?”

“नहीं ! कदापि नहीं ! यह धर्म के नाम से पाप है । केवल इच्छण में ही नहीं । ऐसे ऐसे अनर्थ उत्तर में, अलमोड़ा की ओर भी होते हैं । यह पाप शीघ्र बंद होना चाहिए ।”

“अच्छा तो विवाह के लिये उमर कौन अच्छी है ?”

“मैं युवती विवाह को बहुत बुरा समझती हूँ । जिन लोगों में अनाप शनाप दहेज देने की चाल है उनमें रुपए के अभाव से चालीस पचास वर्ष की उमर तक बहन बेटी को कुँवारी रखकर घोर अन्याय किया जाता है । जैसे प्राणी मात्र को किसी न किसी प्रकार की खुराक आवश्यक है वैसे स्त्री के लिये पुरुष और पुरुष के लिये स्त्री का संबंध एक प्रकार

की खुराक ही समझे। और जब ऐसा है तो भूख लगते ही खाने को मिल जाना चाहिए। जो भूख लगते ही भोजन नहीं पा सकता है उसकी नियत अखाद्य वस्तुओं पर दैड़ती है। नीचों के यहाँ तक का खा लेने की प्रवृत्ति होती है। संसार के अनुभव से और शास्त्र की मर्यादा से कन्या के विवाह का काल रजोदर्शन से पूर्व और समागम का समय रजोदर्शन होते ही है। बल्कि गर्भधान संस्कार भी तब ही होता है।”

“शास्त्रों में तो कपड़ों से होने के तीन वर्ष बाद तक का लेख बतलाते हैं ?”

“नहीं ! उसका मतलब यह है कि यदि योग्य वर न मिले तो इतने समय तक पिता राह देख सकता है। यह मतलब न होता तो ऐसा क्यों लिखा जाता कि रजस्वला होने पर भी जो पिता अपनी लड़की का विवाह नहीं करता, वह प्रति मास उसके रज का पान करता है। रजोदर्शन से पूर्व विवाह करने के सैकड़ों प्रमाण हैं।”

“हाँ ! तो बारह वर्ष की उमर तक विवाह करके पहले, तीसरे, पाँचवें वर्ष में शरीर का ढंग देखकर गैना कर देने से आपका प्रयोजन सिद्ध हो गया परंतु तलाक ? मर्द खराब निकल आवे तो उसका लाग करके दूसरा विवाह अवश्य होना चाहिए।”

“और दूसरा खराब निकल आवे तो तीसरा, चौथा, पाँचवाँ इत्यादि ? क्यों यही ना ? यह विवाह नहीं ठेका है।

जिन लोगों में ऐसी रिवाज है उनमें दंपती का प्रेम नहीं होता, ईश्वर पर भी आदमी की भक्ति इसी लिये है कि उसकी बदली नहीं होती। नहीं तो लोग नित्य नया बनाकर उसे बदला करें। प्रथम तो पति में ऐसी खराबी ही क्या, जो हो भी वह उसकी इच्छा के अनुसार चलने में भलाई में बदल जायगी। और यदि उसमें चोरी, अन्याय, व्यभिचारादि दोष आ पड़े तो उन्हें सुधारना चाहिए। खो का सुधारा पति अवश्य सुधर सकता है। पातिक्रत मात्र उसमें चाहिए। “हिन्दू गृहस्थ” और “बिगड़े का सुधार” देखिए।”

“मान लिया कि अच्छी ख्याँ पति को ठिकाने ला सकती हैं परंतु विधवा की हमारे यहाँ निःसंदेह दुर्दशा है। उन पर घोर अत्याचार होता है। उनका विवाह अवश्य होना चाहिए।”

“विवाह उन विधवाओं का होता है जो शूद्र अथवा अति शूद्र हैं। उच्च वर्ण में बिलकुल अयोग्य है। जिनमें ऐसी चाल है उनमें से भी जो ऊँचे खयाल के हैं वे इस चाल से बृणा करते हैं। “तिरिया तेल हमीर हठ” का सिद्धांत हिन्दू नारियों के मन पर अंकित है। यदि विधवा विवाह का प्रचार किया जाय तो फल यह होगा कि दांपत्य प्रेम नष्ट हो जायगा। किसी न किसी कारण से आपस में कलह होते ही एक दूसरे को जहर देने पर उतारू होगा। ऐसा करके हत्या की संख्या न बढ़ाइए। शास्त्रों में भी इसी लिये इसका

( ८८ )

निषेध है। आपको यदि अवकाश हो तो “सुशीला विधवा” में मेरी फूफी का चरित्र पढ़ लेना।”

“हाँ पढ़ा है। अच्छा है। वह यदि आपकी फूफों हैं तो आप भी चरण छूने योग्य हो परंतु इस जमाने में विधवाओं का पेट भरना भी कठिन हो गया है।”

“हिंदू समाज अभी इतना नहीं छूबा है कि उनका पेट भरना कठिन हो जाय। भले घरों में वे अब भी पूजी जाती हैं। यदि उनका उपकार करना हो तो उनके पालन पोषण और चरित्र-रक्षा के लिये विधवाश्रम खोलिए। खुले भी हैं।”

इस तरह बातें करते करते “आगरा फोर्ट” की पुकार पड़ते ही उस रमणी ने प्रियंवदा के चरण छूकर प्रणाम किया और अपने संदेहों की निवृत्ति पर धन्यवाद देती हुई वह बिदा हो गई।

---

## प्रकरण—५५

### संयोग का सौभाग्य

हमारी पंडित पार्टी को आगरे में कुछ काम नहीं था। यदि योड़ा बहुत काम भी निकल आवे तो जब ये घर पहुँचने की उतावल से अयोध्या ही न जा सके तब इससे बढ़कर आगरे में कौन काम हो सकता है? खैर, यमुना स्वान करके कालिदी कूल पर भोजन करने के अनंतर ये लोग गाड़ों के टाइम पर आ पहुँचे और वहाँ से सवार होकर अजमेर पहुँचे। मार्ग में काई ऐसी घटना नहीं हुई जो उल्लंघन करने योग्य हो। जब योड़ा और बहुत, रेल का सफर करनेवालों के सामने स्टेशनों के गुण और दोष अनुभव में पक्का करने के लिये आखड़े होते हैं तब उनके लिये भी कागज खराब करना अच्छा नहीं। हमारी पार्टी को घर छोड़े बहुत मास व्यतीत हो चुके, ज्यों ज्यों घर पास आता जाता है त्यों ही त्यों शीघ्र ही गृहप्रवेश के लिये चटपटी बढ़ने लगती है। ऐसी दशा में अब पंडित मंडली को इधर उधर के भगड़ों में उलझा रखना मानों उनके आतुर मनों को, संयोग की लालसा से मनमोद्दक बनाने का आनंद लूटते समय वियोग का पद्धा बीच में ढालकर विषाद की झलक से उनके मुख कमल को मुरझा देना है। आइए, आइए, इसलिये अजमेर का स्टेशन आते ही बहुत काल के

बिछुड़े हुओं का मिलाप कराकर भरत-मिलाप की चित्र की एक भाँकी की परछाई देख लीजिए ।

अच्छा तो यह लीजिए । अजमेर आ पहुँचा । बस “अजमेर ! अजमेर !!” की आवाज के साथ जब गाड़ी प्लेट-फार्म पर खड़ी हो गई तब इस पार्टी को दूर से भीड़ की चीर-कर आती हुई एक जोड़ी दिखलाई दी । देखते ही पंडित, पंडितायिन का सूखा हुआ मन हरित हो गया, मुरझाई हुई लता लहलहा उठी, सारी चिताओं में, चिता से भी बढ़कर, विना अग्नि के भस्म कर डालनेवाली चिता में जन्मलन के संयोग का अमृत सिंचन होकर वियोग का विषाद जाता रहा । अतिकाल में अपने प्राणप्रिय बछड़े को देखकर गौमाता के स्तनों में से जैसे दूध के भरने भरने लगते हैं, जैसे वह अपने पुत्र को चाट-कर अपने अंतःकरण की तपन बुझाने के लिये हुंकार करती हुई उसकी ओर दौड़ी जाती है उसो तरह आगत जोड़ी के दर्शन होते ही प्रेमांबु की अश्रुधारा से उनका संतम हृदय ठंडा करने के लिये, शुभाश्रिप की अमृतधारा से उनको गद्गद करते हुए स्वयं प्रेमविद्वल हो जाने के लिये अपने असबाब को भूल-कर, अपने साथियों को भूलकर, अपना देहाभिमान भूलकर, पंडित दंपती दौड़े हुए गए । यह सत्य है कि संयोग की मिठास उसी समय बोध होती है जब वियोगजनित विषाद का कहु वापन चलते चलते वह एकाएक प्राप्त हो । यदि संसार में वियोग के विषाद की अग्नि से नर नारी न तपाए

जाते हों, उनका हृदय कमल न झुलसा दिया जाता हो तो सचमुच संयोग जैसा मधुर पद्मर्थ भी सीठा है ।

इस उपन्यास के दीन मतिहीन लेखक में सामर्थ्य कहाँ जो गोल्वामी तुलसीदास जी की तरह, हजारों लाखों वर्ष बीत जाने पर भी पाठकों के, हृदय चक्षुओं के सहारे, इन चर्म चक्षुओं के सामने राम-भरत के प्रेम-सम्मिलन का हूँबहूँ चित्र खड़ा कर दे । वैसा नहीं, उसका शतांश भी नहीं ! हाँ यदि उसकी परछाई भी दिखलाई देने लगे तो इस लेखक का सौभाग्य । सौभाग्य इसलिये कि इसमें उसकी योग्यता कुछ नहीं । यदि वह बहुत ही कोशिश करे तो उनके भावों की चोरी कर सकता है । ऐसी चोरी थोड़ी और बहुत सब ही करते आए हैं और जब उन्होंने अपने भावों को सर्व साधारण के उपकार के लिये खोलकर रख दिया है तब ऐसी नकल चोरी नहीं कहलाती । लेखकों की चोरी, छकैती भिन्न प्रकार की होती है ।

अस्तु ! प्रियानाथ और प्रियंवदा के समीप पहुँचते ही कांतानाथ और सुखदा ने उनके चरणों में सिर रख दिए । गठ-जोड़ से नहीं, क्योंकि शास्त्रीय कामों का संपादन करने के लिये पति के उत्तरीय का एक कोना स्त्री की साड़ी से बाँध दिया जाता है । दोनों का संबंध अलौकिक होने पर भी, दंपती के एक प्राण दो तन होने पर भी हृदय के गठजोड़े के समक्ष कपड़े का गठजोड़ा कोई चीज़ नहीं । केवल उसका अनुकरण है । बेशक आज इन दोनों का दोनों प्रकार का गठजोड़ा नहीं

है किंतु जब दोनों अलग होने पर दोनों के हृदय का भाव एक है, दोनों ही दोनों को भक्ति पुष्पांजलि समर्पण करने के लिये एकाग्र हुए हैं और जिनकी आराधना करने के लिये इन्होंने सिर नवाए हैं वे एक प्राण देते हैं तब आज से ही कांतानाथ और सुखदा के हृदय का गठजोड़ा समझ लो। “भैया उठो ! लग्जा उठो !” कहकर जब दोनों कह हारे तब पंडित जी ने बलपूर्वक उठाकर कांतानाथ को छाती से लगा लिया, छाटी के मस्तक पर हाथ फेरा और तब चारों एक दूसरे की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे। हाँ ! यहाँ इतना अवश्य कह देना चाहिए कि प्रियंकदा का अर्द्धस्फुट घूँघट देवर के मुख कमल को पुत्रवत् निरख रहा था और देवर भौजाई जब नवधू होकर अबाकू थे तब सुखदा विचारी की आँखों के सामने गाढ़े घूँघट की कनात खड़ी थी।

कोई दस मिनट तक ये लोग यों ही खड़े रहे। किसी के मुख से कोई शब्द ही न निकलने पाया। ऐसे आत्मीय के सम्मिलन के समय मुखरा वाणी ही जब कर्तव्य-शून्य होकर प्रेम प्रवाह में अपनी वाचालता को बहा देती है तब सबके सब गूँगे की तरह हैं, उनमें से कोई भी बोलता तो किस तरह ! अस्तु पंडित जी ने सब से पहले अपने अंतःकरण को सँभाला। वह कहने लगे—

“स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु,  
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ।

ऐश्वर्यमस्तु बलमस्तु रिपुच्चयोस्तु,  
वंशो सदैव भवतां हरिभक्तिरस्तु ॥”

और साथ ही “अखंड सौभाग्यवती पतिपरायणा पुत्रवती भव” कहकर उन्होंने एक बार फिर सुखदा के सिर पर हाथ फेरा। कांतानाथ की जब अभी तक प्रेम विद्वलता बनी हुई थी तब उसके मन में ऐसा आशीर्वाद सुनकर कैसे भाव पैदा हुए सो मैं क्या कहूँ किंतु सुखदा को निश्चय हो गया कि “मुझे मनवालित फल मिल गया ।” बस वह आनंद में मग्न होकर आह पाने का प्रयत्न करती हुई सब के साथ गाड़ियों में चढ़कर पुष्कर पहुँची ।

“पुत्रवती भव” का आशीर्वाद पाकर सुखदा को यद्यपि निश्चय हो गया कि अब पति के मुझे अंगीकार कर लेने में संदेह नहीं है किंतु अभी तक उसके हृदय की धड़कन कम नहीं हुई थी, बस इसलिये पंडित जी के मुख से फैसला सुनने के लिये वह जिस समय आतुर थी उसी समय पुष्कर के विमल सरोवर के तटवर्ती वृक्षों से, लता पञ्चवें से और शुभ्र सुंदर भवनों से आच्छादित कुंज में प्रवेश करते करते उन्होंने कहा—

“आज वहू के समस्त अपराध तीर्थगुरु के तट पर चमा कर दिए गए । परमेश्वर अपने अखंड अनुयह से इसे पतिपरायणता का आदर्श बनावे और इसके पुत्र हो और चिरंजीवी हो, यह मैंने आशीर्वाद भी दे दिया परंतु शाश्वत की मर्यादा के लिये इसे पंचगव्य प्राशन और हेमाद्रि स्नान

और करा देना चाहिए । कुच्छु चांद्रायण व्रत यह अनेक कर ही चुकी । उस इतना करने के अनंतर हमारे पूर्वजों के श्राद्ध के लिये पाक संपन्न करने की यह अधिकारिणी है । इसलिये हमारी इच्छा है कि पहले इससे यह कार्य कराकर तब इसके हाथ से बनाए हुए पाक से हम श्राद्ध करें ।”

पितृ तुल्य पंडित जी की आङ्गा सुखदा ने माथे चढ़ाई । यद्यपि उसने अपने मुख से न “हाँ” कही और न “ना” और द्येष्ट श्रेष्ठों के समक्ष वह कहती भी क्योंकर ! यदि परदेश न होता तो उनके समक्ष आने से भी क्या मतलब था ? किंतु उसके मुख के भाव से प्रियंवदा ने जान लिया कि “जो कुछ आङ्गा दुर्दृष्ट है उसे सिर के बल करने को वह तैयार है ।”

पंडितजी की इच्छा थी कि सुखदा को प्रायश्चित्त कराने का कार्य और उन्हें श्राद्ध कराने का काम इस बार गौड़बोले जी करे । जब वह साथ ही इसके लिये थे तब उन्हें उज्ज भी क्या हो ? किंतु पुष्कर की सीमा में पैर रखते ही अन्यान्य तीर्थों की तरह यहाँ भी भूतों ने घेर लिया था । और और तीर्थों में तीर्थगुरुओं के मारे, भिखारियों के कष्ट से यात्रों तंग आ जाता है, चाहे जैसा दृढ़-संकल्पी हो उसकी श्रद्धालुता की जड़ यदि उखड़कर न गिर जाय तो हिल अवश्य उठती है फिर पुष्कर सब तीर्थों का गुरु है । शिष्यों से गुरु में यदि कुछ अधिकता न हो तो वह गुरु ही कैसा ? मूर्ख निरक्षर पंडों के ठट्ठ से, भिखारियों की नोच खसोट से और लाव लाव की चिल्ला-

हट से पूर्व प्रसंग स्मरण करके यद्यपि पंडित जी का धैर्य छूट ही जाता किंतु सौभाग्य से पंडित प्रियानाथ जी का पंडा “साक्षरा” को “राच्छा” में बदल देनेवाला साक्षर नहीं सचमुच, साक्षर निकला । वह अच्छा कर्मकांडा, नामी वैयाकरण होने के साथ ही अच्छा ज्योतिर्पी और अच्छा वैद्य भी था । इन गुणों के अतिरिक्त पंडों भर में, बस्ती भर में उसकी धाक थी । बस पंडित धरणीधर मिश्र का नाम सुनते ही समस्त पंडे अपनी अपनी बहियाँ बगल में दबाकर अलग हो गए और भिखारियों की भीड़ भी छँट गई ।

शास्त्र की विधि के साथ, श्रद्धापूर्वक, लोभरहित होकर प्रत्येक कार्य में प्रियानाथ जी को संतुष्ट करते हुए दोनों कार्य इन्हीं महाशय ने कराए । जब कार्य की समाप्ति का समय आया तब फिर पंडित जी बोले—

“हाँ ! एक बात कहनी और रह गई थी । बहु रानी, इस मध्य पिंड का भोजन आज तुम्हारे हो लिये है । खूब भक्तिपूर्वक भोजन करना । इसके सिवाय और कुछ नहीं ।”

सुखदा ने चाहे इसका मतलब न समझा हो परंतु प्रियं-वदा ने पति की आँखों में अपने नेत्र उलझाकर मुस्कुराते हुए सुखदा के कान में कुछ कहा और लजित होकर उसने अपना सिर झुका लिया । पंडित जी की पहली आङ्गा की जिस तरह तामील हुई थी उसी तरह इस समय हुई और यों श्राद्ध अनुष्ठान सुखपूर्वक संपन्न होने पर जो सुखदा किसी

समय दुःखदा थही गई थी वह आज सच्ची सुखदा बनकर अपनी जंठानी के चरणों में लोटवी हुई उससे चमा पर चमा माँगने और कहने लगी कि “जब तक तुम ‘माफ कर दिया’ न कहोगी तब तक इन चरणों को न छोड़ गी ।” प्रियंवदा ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और तबसे दानों में सभी वहनों का सा प्रेम हो गया ।

पंडित जी ने, उनके साथियों ने धरणीधर महाराज को, वहाँ के अन्यान्य सुपात्र ब्राह्मणों को और दीन भिखारियों को यथाशक्ति दान देकर क्योंकर उन्हें अपने मधुर भाषण से संतुष्ट कर दिया और क्योंकर उनके आशीर्वाद से वे गद्गद हो गए सो कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तीर्थ-स्नान और दर्शन करनेवाले सज्जनों को इसका थोड़ा बहुत अनुभव होता ही है । हाँ ! एक घटना से उनका हृदय एकदम छहल उठा । पंडित जी जैसे दयालु ब्राह्मण के आँखों देखते, उनके निकट से जगजननी, परम वंदनीया गौ माता को पामर मगर किनारे से खैंचकर और सो भी जल-पान करते समय ले जावे, इनके नेत्रों के समन्त्र, हजारों आदिभियों के देखते देखते हिंदुओं की प्यारी गौ छुबक छुबक करती करती जल में झूब जावे, उसकी नहीं सी बछिया किनारे पर बिलबिलाती खड़ी रहे और किसी से छुक्र करते धरते न अन पड़े, वस इससे बढ़कर संताप क्या हो सकता है ? वह अवश्य उसे छुड़ाने के लिये लँगोट बाँधकर कूद पड़ते, वह तैराक भी

कम नहीं थे परंतु पुष्कर जैसे पुण्य सरोवर में मगर एक नहीं, सैकड़ों, इससे भी अधिक हैं। जहाँ के मगर, घड़ि-याल नर-शरीर से, सिंहव्यालादि जैसे नरवाती भीषण जीवों को डरा देनेवाले मनुष्य से न डरकर उन्हें किनारे से खेंच ले जाने का हौसिला रखते हैं, जिनके मारे किनारे पर बैठ-कर स्नान कर लेने के सिवाय जल में धुसने तक का साहस नहीं होता, जल में एक अट्ट पदार्थ को छुड़ाने के लिये पंडित जी को प्रवेश करने देना किसी को स्वीकार नहीं हुआ। बस इनके तैयार होते ही—“खबरहार ! भीतर पैर रखा तो ! गाय तो गई सो गई ही परंतु तुम्हारा भी कदापि पता नहीं लगेगा। अभी पाँच मिनट में तुम्हारे ढुकड़े ढुकड़े करके खा जायेंगे। अकेजे तुम्हारे शरीर पर दस बीस दृट पड़ंगे” की चिल्लाहट मची। बस हताश होकर इन्हें रुक जाना पड़ा और सच पूछो तो प्रियंवदा की चार चूड़ियों के बल से ये अचानक रुक गए। यों ये रुके सही परंतु इन्होंने रो दिया—

“ हे भगवान्, आप तो एक बार गज की देर सुनकर उसे ब्राह्म से बचाने के लिये, नंगे पैरों गरुड़ को छोड़कर दैड़ आए थे आज कहाँ हो ? राम राम ! बड़ा ही अधर्म है। इम भीषण दृश्य से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। ऐसा पुण्यभूमि में ऐसा धोर अनर्थ ! हाँ ! अब मैं समझा ! अब इसका कारण मेरे ध्यान में आया। इस ब्रह्मद्रव में निरंतर

निवास करके इन पामरों की ऐसे धोर पापों में प्रवृत्ति क्यों है ? क्या पुष्कर में रहकर भी इनके पाप नहीं छूटते हैं ? हाँ नहीं छूटते हैं । इसलियं नहीं छूटते कि यं मलयगिरि निवासिनी भिलिनियों के समान चंदनतमशाखा को जलाने पर भी उसकी सुगंधि के रसास्वादन को नहीं जानते । वही स्तन के दूध को त्यागकर रक्त पान करनेवाली जलौका का सा भसला है । यदि हजार वर्ष तीर्थ सेवन करने पर भी किसी ने अपना सन न लगाया तो उसकं सिर मारने से क्या जाभ ? परंतु क्यों जी गैड्डोंलं महाशय ! इन तीर्थगुरु पुष्कर महाराज को भी ऐसा धोर कर्म स्वीकृत है ? बस हृद हो गई ! हाँ इसलियं मंजूर हो सकता है कि यह गुरु हैं । लोगों को प्रत्यक्ष उदाहरण से दिखा रहे हैं कि पाप का यही प्रायश्चित्त है । पुण्य संचय का फल स्वर्ग और स्वर्ग में पहुँच जाने पर भी जिनके मनोविकार शमन न हों उनकी यह गति है । अच्छा ! होगा ! परंतु जब हजारों लाखों यात्री यहाँ आते हैं, हजारों नर नारी यहाँ निवास करते हैं और सैकड़ों ही पशु पक्षियों को इसमें जल पान करना होता है तब सबकी रक्षा का तो कुछ उपाय होना चाहिए । ”

“हाँ यजमान, अजमेर के धार्मिक सज्जनों ने एक उपाय सोचा है । वे चाहते हैं कि इन समस्त धाटों के सामने लोहे की जालियाँ लगा दी जायें ताकि मगर और घड़ियाल उनमें प्रवेश न कर सकें और सब लोग सुखपूर्वक स्नान कर सकें । ”

“बेशक उपाय तो उत्तम है परंतु फिर “शुभस्य शीघ्रम्” इतनी देरी क्यों है ? यह कार्य तो ऐसा है कि जितना शीघ्र हो सके उतना ही अच्छा है । इसके लिये रूपयों का भी भार अधिक नहीं पड़ सकता क्योंकि साल भर में कम से कम लाख डेढ़ लाख यात्री आते होंगे । यदि वे सुखपूर्वक इस कार्य के लिये चार चार आना भी डालें तो सहज में हजारों रूपये इकट्ठे हो सकते हैं और इस शुभ अनुष्टान के लिये देश के और भी सुपूर्त, मार्ड के लाल सुख नहीं मोड़ेंगे ।”

“वास्तव में उद्योग का अभाव है । आपस की फूट से विलंब हो रहा है । अब आपके कहने से उन्हें फिर उक्साँगा । खूब परिश्रम करूँगा । सफलता परमेश्वर के हाथ है परंतु कार्य यदि सचे अंतःकरण से किया जायगा तो अवश्य सफलता हमारी चेरी है ।”

“निःसंदेह ! सचे अंतःकरण की प्रत्येक कार्य में आवश्यकता है । अंतःकरण लगाकर तीर्थ-सेवन न करने का जो फल ग्राह रूप से मिल रहा है वह आपने देख ही लिया ।”

इस प्रकार बातें करते करते धरणीधर महाराज इन सब को लेकर देव-दर्शन के लिये वहाँ से रवाना हुए किंतु कोई सौ डंड़ सौ कदम चलकर इन्होंने जब द्वा बालक संन्यासियों के दर्शन किए तब पंडित जी एकदम रुक गए ।

---

## प्रकरण—५६

### पुष्कर में बालक साधु

गत प्रकरण के अंत में पुष्कर की कुंज से चक्षकर देव-दर्शन के लिये जाते हुए हो साधुओं को देखकर पंडित जी रुक गए थे। उनमें एक की वय १८ साल, गौर वर्ण, विस्तीर्ण ललाट, विशाल वचस्पति, गठा हुआ बदन, सिर की जटा कंधे तक लटकी हुई, शरीर पर भस्म रमाए हुए, लाल लाल आँखें और चेहरे से संयम का, तप का अथवा भजन का प्रभाव फूट पूटकर निकलता था। उसके मुख कमल की प्रतिभा देख देखकर अनायास बोध होता था कि यह ब्राह्मण शरीर है। इंडिय-दमन से सुप्राप्त कांति उसके शरीर पर सुचारू रूप से झलक रही थी। मुख पर दाढ़ी मोछ का नाम नहीं और न कानों में कुंडल अथवा छिद्रे हुए कान। गले में रुद्राञ्ज का कंठा अवश्य था। कमर में मूँज की कोंदनी पर लैंगाटी और हाथ में एक तुंबी के सिवाय उसके पास कोई वस्तु नहीं थी।

दूसरा साधु, साधु नहीं साधुनी अथवा संन्यासिनी थी। इसकी उमर तेरह साल, बही गौर वर्ण सुंदर, सुडौल और गोल चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें। और सब बातें उस साधु से मिलती जुलती, यहाँ तक कि द्वानों के चेहरे मोहरे को देखकर एक छोटा सा बालक भी अनायास कह उठे कि ये

( १०१ )

दोनों माँ-जाए भाई बहन हैं । केवल दोनों में यदि अंतर था तो इतना ही कि उसका पुरुष शरीर था और इसकी नारी देह । उसने केवल लंगोटी बौधकर अपनी लज्जा निवारण कर ली थी और इसे अपना शरीर ढाँकने के लिये दस घाथ की साड़ी ओढ़नी पड़ी थी । माड़ी श्वेत नहीं, गेल्ड नहीं, केवल भस्म में रँगी हुई खाकी । दोनों के दर्शन करने पर विचारवान् नर नारी अवश्य जान सकते थे कि शिव ब्रह्मादि को, नारदादि महर्षियों को नचानेवाले भगवान् पंचशायक का विश्वविमोहन वायु अभी तक इनके निकट नहीं पहुँचा है । दोनों के मुख पर भोलापन, शांति और विराग ने अपना डंरा डाल रखा था । दोनों हलवाई की दूकान के सामने बैठे हुए बिना तरकारी, बिना अचार, बिना इही पूरियाँ खाते जाते थे और जो सज्जन उन्हें फिर लेने के लिये मनुहार कर रहा था उससे कहते जाते थे कि “बस अब नहीं ! अब कुछ नहीं चाहिए । बहुत हो गया । छुट्टी हुई ।” इनकी ऐसी निर्लोभता देखकर किसी ने पैसा दिया तो “नहीं,” रूपया दिया तो “नहीं” और कपड़ा दिया तो “नहीं” । बस “नहीं” के सिवाय कुछ नहीं ।

इन दोनों को सिर से पैर तक कई बार देखकर पंडित जी मोहित हो गए । कुछ इसनिए नहीं कि उनका रूप लावण्य उनके मन में समागया हो किंतु पंडित जी के अंतःकरण पर सचमुच ही उनका ऐसा प्रभाव पड़ा जैसा अभी तक किसी मनुष्य देहधारी का नहीं पड़ा था । इनकी आकृति, इनकी चेष्टा

और इनके मुखों का भाव स्पष्ट रूप से साच्ची दे रहा था कि “इनका ब्रह्मचर्य अखंड है, काम-विकार अब तक इनके पड़ास आकर नहीं फटकने पाए। इस घोर कलिकाल में ये बातें एकदम असंभव हैं। भगवान् शंकराचार्य के अतिरिक्त अभी तक कलियुग में दुनिया के पर्दे पर कोई पैदा ही नहीं हुआ जिसने ब्रह्मचर्य के अनंतर गृहस्थाश्रम का, वानप्रस्थ का ग्रहण ही न कर एकदम संन्यास ले लिया हो।” पंडित जी के मन में ऐसे विचार होते ही उन्होंने इनके चरणों में प्रमाण करके पूछा—

“महाराज, यह भोग की बिरियां योग ? असंभव को संभव ? अनुमान होता है कि पूर्व जन्म के शुभ संस्कार हैं। तप का कोई भाग शेष रह गया है ?”

“नहीं पिता ! न हम तप जानते हैं और न योग। भगवान् की मर्जी। हमने जन्म लिया तब से इसके सिवाय कुछ देखा ही नहीं। जिस दशा में छाल दिया उसी में पड़े हैं और डुकड़े माँग खाते हैं। पिता को कभी सुरत देखना न सीब नहीं हुआ। छप्पन के अकाल में माता अन्न बिना बिलबिला बिलबिलाकर मर गई। इस बहन का उसने केवल हमारा पेट भरने के लिये एक बूढ़े से विवाह करके साठ रुपए लिए थे, सो भी उसकी बीमारी में कोई बदमाश चुरा ले गया। सत्तावन में ज्वर से पीड़ित होकर वह बूढ़ा भी चल बसा। एक साधु ने हमको पाला पोसा था सो महाराज भिक्षा न

( १०३ )

पाकर बास्थ में मर गए । शरीर वेशक हमारा ब्राह्मण का है परंतु अब तो मिखारी हैं, दुनिया के ढुकड़े ले रहे हैं । दूसरे चौथे जब मिल जाय तब चना चबैना माँग खाते हैं और (दूर से दिखाकर) गुरु की गुफा में पड़ रहते हैं ।'

‘आपके इस धैर्य को, आपकी इस धर्म-दृढ़ता को धन्य है ! परंतु महाराज, बाहर के कुसंस्कार से जब आपको काम बाधाएँ होंगी, भेग विलास की इच्छा होगी और लोग आपको लालच में फँसावेंगे तब ये बातें नहीं ठहरने पावेंगी । इस लिये एक बार गृहस्थाश्रम करो और इस बाई की रक्षा करो । जमाना बहुत नाजुक है ।

‘हाँ होगा । परंतु अब इच्छा नहीं । हाँ इच्छा विद्या पढ़ने की अवश्य है । कोई हमारे योग्य बातें सिखलानेवाला पंडित मिल जाय तो पढ़ेंगे जिससे रस्ते से चलकर साधना कर सके ।’

“अच्छा ऐसा ही विचार दृढ़ है तो हमारे गाँव में चलो । वहाँ सब प्रवंध हो सकेगा ।”

“नहीं बाबा ! गाँव में जाकर दुनिया के माया जाल में फँस जायें तो किया कराया सब धूल में मिल जाय । जो आपने कहा सो सब सच्चा हो जाय ।”

‘नहीं महाराज, डरिए मत । यहाँ आपको ललचानेवाले, विगड़नेवाले बहुत मिलेंगे किंतु वहाँ किसी की मजाल नहीं जो आपको सता सके । एक पहाड़ी पर एक छोटी सी गुफा

( १२४ )

रहने को । विलक्षण एकात् वास । वहीं आपके पास भिजा पहुँच जायगी और गौड़बोले महाशय आप दोनों को पढ़ा आया करेंगे । आपकी इच्छा न हो तो आप बस्ती में न आना ।”

“‘अच्छा वाबा !’’ कहकर दोनों इनके साथ हुए और ये लोग भी देव-दर्शन को रखाना हो गए किंतु एक बात पंडित जी के हृदय में समाई नहीं । हजार रोकने पर भी उनसे गौड़बोले को सुनाकर मन का बोझा हल्का किए बिना न रहा गया । वह रो रोकर आँसू पोछते हुए, हिचकियाँ भर भर कर फिर रुक जाते और फिर कहते हुए गौड़बोले को इस तरह सुनाने लगे—

“ओहो ! देश की कैसी दुर्दशा है ! खला यह लड़की के बल पेट भरने के लिये, साठ ही रूपये में बूढ़े को न बेच दी जाती तो विघवा क्यों होती ? हाय ! उन रूपयों की भी, ऐसा पाप कर्म करके के बल पेट भरने के लिये कमाए हुए रूपयों की चोरी ? हाय बिचारे नन्हें नन्हें बालकों को छोड़कर भूख की आग में माता का जल मरना धोर अनर्थ है । बस हृद हो गई ! जिस देश में ऐसे उदाहरण विचारान हैं उसमें, अभी बालक साधुओं की ही भिजा बंद करके हमारा सुधारक समुदाय विलायत की नकल करना चाहता है । विलायत में भीख माँगनेवाला सजा पाता है और इस भय से वे लोग जब परिश्रम से पेट भर सकते हैं तब वहाँ की प्रजा अकर्मण नहीं होने पाती । यह सत्य है किंतु वह धनाळ्य देश है ।

वहाँ जीविका के हजार रस्ते हैं किंतु जिस देश की प्रजा नितांत दरिद्रो हैं वहाँ जीविका के मार्ग खोलने से पहले भीख बंद ? वेशक इस यात्रा के अनुभव ने निश्चय करा दिया कि माधु समुदाय में यदि घुरहू जैसे अनेक नर-पिशाच हैं तो वहण गुफायाले महात्मा जैसे सच्चे साधु भी कम नहाँ हैं । यदि हिसाब लगाकर देखा जाय तो अधिकांश ऐसे निकलेंगे जो अब न मिलने से फक्त बन गए हैं अथवा इच्छा न होने पर भी भख मारकर उन्हें बनना पड़ा है । यदि अब भी भीख बंद करने के लिये कानून बनाकर कृतज्ञता के स्वाली पुलाव पकाने की इच्छा रखनेवाले इसके बदले तीर्थ स्थानों में काशी और हरिद्वार, हरीकेश के समान सत्र खोलने का उत्थोग करें, भिखारियों को समझाकर किसी न किसी प्रकार की उप-जीविका में प्रवृत्त किया जाय तो आधे से अधिक निकल जायेंगे । जो अंगहीन, शक्तिहीन, अपाहिज कोड़ी हैं वे अलग निकल सकते हैं । उनकी रक्षा का स्वतंत्र प्रबंध किया जाय और तब जो निकल्मे, अकर्मण्य अथवा वास्तव में जिनका समाज पर बोझा है उनके लिये उचित रूप पर दबाव न डाल कर कानून का बोझा भी डाला जाय तो अनुचित नहीं । उनका कोई कार्य करने से पहले यह अवश्य सोच लेना चाहिए कि वे उस देश के वकील बनने चले हैं जिसमें केवल एक ही फसल मारी जाने पर लाखों आदमी गवर्मेंट की कुपा के भरोसे अकालमोचन के कामों पर टूट पड़ते हैं ।

फिर बालक साधुओं की यदि भिन्ना वंद की जायगी तो इन जैसं निरपराधी भी सताए जायेंगे । ऐसे ऐसे भख मारकर पाप कर्म में प्रवृत्त होंगे । इन दोनों ने दिखला दिया कि यदि तलाश की जाय तो इस घोर कलियुग में ध्रुव के समान साधु आज भी मिल सकते हैं । जरा सोचकर—” इतना कहते कहते पंडित जी का गला रुँध गया । वह आगे कुछ न कह सके और इसी अर्में में पितामह ब्रह्मा जी के मंदिर में आरती का टकोरा होते ही “जय जय जय ! भगवान् ब्रह्मदेव की जय !!!” कहते हुए सब के सब मंदिर के भीतर प्रवेश कर दर्शन का आनंद लूटने लगे । पंडितजी ने विनय की—

“भगवन्, आप देवताओं से लेकर चिउँटी तक के पिता-मह हैं । जब सृष्टि ही आप से है, जब उसके रचयिता ही आप हैं तब आपको पितामह कहना कौन बड़ी बात हुई । ब्रह्मा, विष्णु और महेश, भगवान् जगदीश्वर के तीन रूप हैं । उत्पन्न करने के समय ब्रह्मा, पालन करती बार विष्णु और संहार करने में महेश—परंतु जब उत्पत्ति ही न हो तब पालन किसका और इसलिये इस त्रिमूर्ति में आपका प्रथम आसन है । यह समष्टि संसार की समष्टि स्थिति के समष्टि विभाग हैं । अच्छा पितामह, यदि हम दुनियादारी का विचार करें तब भी उत्पत्तिकर्त्ता माता का पिता से अधिक आदर है । तब प्रभु ! यह तो दास को बतलाओ कि भगवन्, आप उस खाल के छोकरे से कैसे हार गए । नहीं महाराज, यह भी आपकी

लीला है। “गोविंद की गति गोविंद जाने।” हम पापी जीव क्या जानें कि कौन हारा और कौन जीता। आप यदि कृष्ण के भक्त हैं तब भी वही हारे क्योंकि भक्तों के भगवान् सदा कनौड़े रहते हैं, आप यदि दादा हैं तब भी वही। अस्तु आप सब प्रकार से सुर-श्रेष्ठ हैं। मेरे इष्टदेव के इष्टदेव हैं क्योंकि मैं लघुमति से नहीं जान सकता कि तीनों में से कौन बड़ा और कौन छोटा? मेरे लिये तीनों समान, तीनों एक और तीनों में से प्रत्येक में तीनों के दर्शन होते हैं। संसार की व्यवस्था को लिये नाम तीन हैं किंतु हैं तीनों ही एक। हे प्रभु! रक्खा करो। मुझे भगवान् की अविचल, अन्यभिचारिणी भक्ति प्रदान करो। मैं आपकी अनंत सृष्टि में एक कीटानुकीट हूँ, पापी हूँ, अपराधी हूँ। रक्खा करो नाथ! रक्खा करो!!” वस इस तरह कहते कहते पंडित जी गद्गद हो गए, उनके लेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह होने लगा और थोड़ा देर के लिये उनका देहाभिमान जाना रहा।

ऐसे दर्शन करके प्रसन्न होकर जब ये लोग मंदिर से लौटे तब गौड़बोले ने एक प्रश्न छेड़ दिया। इन्होंने पूछा कि क्यों पंडितजी, ब्रह्माजी के मंदिर अन्यत्र क्यों नहीं हैं? और देवताओं के एक एक जगह दस बीस मिलेंगे, अधिक मौजूद हैं फिर इनका केवल यहीं क्यों?

“शाल की सम्मति इसमें कुछ भी हो। जो कुछ है उसे आप भी जानते हैं और थोड़ा बहुत मैं भी। परंतु मेरी समझ में

जिससे लोगों का स्वार्थ अधिक सिद्ध होता है उसी देवता के मंदिर अधिक बनाए जाते हैं । आजशल की दुनिया परले सिंह की स्वार्थी है । यह ठहरे चूड़े बाबा । जैसा जिसका कर्म हुआ वैसी उसकी प्रतिमा गढ़ डाली । हो इनसे भी स्वार्थ सिद्ध होते हैं किन्तु हजारों वर्ष तप ऊरे पर । और आजकल लोगों का धी खाने ही शरीर चिकना होना चाहिए । बस यही सबब है कि जैसे दुनियादारी में पड़ते ही लोग माता पिता को भूल जाते हैं वैसे ही इनकी गोद में से निकलने की वाद हन्हें याद नहीं करते ।”

वैर ! इम तरह धर्मचर्चा करते करते पहाड़ी चढ़कर जब यह पार्टी गायत्री जी के मंदिर में पहुँची तब पंडित जी ने भगवती के चरणारविंद में मस्तक नवाकर एकाग्रजित से निस्तव्य होकर माता की इस प्रकार स्तुति की—

“हे जगजननी ! हे जगदंबा, तुम्हारी क्या स्तुति करूँ ? मुझ अभागे, धन के दरिद्री, मन के दरिद्री, तन के दरिद्री और चरित्र के दरिद्री पामर पशु की क्या सामर्थ्य जो आपकी स्तुति कर सकूँ ? जिसकी प्रशंसा करते करते ब्रह्मादिक देवता भी नहीं अवाते, जिसे जपते जपते एक कीटानुकीट से ब्रह्मर्षि और देवर्षि बन जाते हैं जिसका जप करनेवाले के लिये त्रिलोकी का राज्य भी तिनके के समान है उसकी स्तुति क्या ? और सो भी मुझ जैसा अकिञ्चन, तुच्छ करे ! तेरी स्तुति करना मेरे लिये धरती पर पड़े पड़े आकाशवर्ती चंद्रमा को पकड़ना है, छोटे मुँह बड़ी बात है । जो भगवान् की आदि शक्ति है, जो

वेद भगवान् का सार है, जिसके चौबीस अच्छरों में दशों, चौबीसों अवतार विराजमान हैं उसकी स्तुति क्या ? भक्ति-पूर्वक, एकाग्र चित्त से, निश्चेष्ट होकर यदि तेरा ध्यान किया जाय तो तेरे अच्छर अच्छर में परब्रह्म परिपूर्ण है। तू उस परमात्मा का अच्छरमय चित्र है। मैं विशेष कथा कहूँ हूँ ? माता-सच कहता हूँ तू बास्तव में ब्राह्मण बालकों से रुठ गई है। इसमें दोष तेरा नहीं, मैं छाती ठोककर कहता हूँ हमारा है। हमने तुझको मुला दिया। हममें से अब हजारों लाखों तेरा शुद्ध उच्चारण तक नहीं जानते। कहने में पाप होता है परंतु वे यहाँ तक नहीं जानते कि गायत्री किस चिड़िया का नाम है। यदि दीन दुनिया की हाथ हाथ छोड़कर नित्य हम लोग तेरा नियमित जप भी कर लिया करें तो आठों सिद्धियाँ, नवों निधियाँ हमारी चेरी हैं। हम ब्राह्मणों को किसी के आगे हाथ पसारना न पड़े, पाईं पाईं को लिये रिरियाना न पड़े। एक दो नहीं, अब भी सैकड़ों ऐसे देखे जाते हैं जिनका मस्तक कंचल तेरे जप के अखंड प्रकाश से देर्दाप्यमान है। केवल तेरे भरोसे वे संसार को तुच्छ समझते हैं। इसलिये माता, दोष हमारा है। हम कलियुगी हैं, पापी जीव हैं। माता, संसार की स्थिति, लय और पालन करने के लिये माया स्वरूपा हमारा उद्घार करो। हम बुरे हैं तो और भले हैं तो तेरे हैं। हमने न सही तो हमारे पूर्वजों ने तेरे जप की कमाई का बहुत संग्रह किया है। हे माँ ! रक्ता करो ॥'

बस इस समय भी उनकी बही दशा हुई । केवल उनकी ही क्यों साथ में गौड़बोले भी आज विद्वत हैं । उनकी आँखें पानी बहा रही हैं, उनके रामांच हो रहे हैं और सचमुच वे माता के ध्यान में मग्न हैं । जब इन दोनों ने अपने आपे को सँभाला तब सब के सब सावित्री के दर्शनकर सीर्थगुरु पुष्कर के घाटों का निरीक्षण करते हुए मन ही मन प्रमुदित होते ताँगों और इकों में सवार होते हुए पुष्करराज को प्रणाम करके बहाँ से बिदा हुए । यहाँ इतना लिखने की और आवश्यकता रह गई कि पुष्कर के भिखारी और जगह से भी दो हाथ बढ़कर हैं । वे यदि गाड़ी में सवार होते ही यात्रियों का पिंड छोड़ देते हैं तो पुष्करवाले गाड़ी इकों के आगे खड़े हो जाते हैं और जब तक पैसा नहीं पा लेते यात्रियों की भवारी के साथ मीलों तक दैड़े जाते हैं । अस्तु ये लोग उनको दें दिलाकर उन दोनों साधु बालकों को साथ लिए हुए बहाँ से चल दिए और इनके ग्राम में पहुँचने तक कोई घटना ऐसी नहीं हुई जो यहाँ उल्लेख करने योग्य हो । हाँ ! जिस समय इनके आने की खबर मिली बस्ती के सैकड़ों नर नारी बाजे गाजे के साथ इन्हें लिवा ले गए और “आगए ! आगए !” की आनंद ध्वनि के साथ सब लोगों ने इनका स्वागत किया ।

---

## प्रकरण—५७

### घुरहू की कुकर्म कहानी

“रे चित्त चित्तय चिरं चरणौ सुरारेः

पारं गमिष्यति यतो भव सागरस्य ।

पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायाः

सर्वं विज्ञांकय सख्ये मृगवृष्णिकाभम् ॥ १ ॥

अहह जन्म गतं च वृथा मम न यजनं भजनं च कृतं हरः ।

न गुरुपादसरोरुहपूजनं प्रति दिनं जठरस्य विपोषणम् ॥ २ ॥

“स्वस्ति श्री सकलसदुपमार्ह, भगवद्वक्ति-परायण, पाणिड-  
त्याद्यतेकगुण-मंडित, पंडित-मंडली-भूषण, श्रीमत्रीतिपात्र,  
श्रद्धेय पंडित श्री ४ प्रियानाथ जी महाशय योग्य ब्रह्मरूप  
निकट वर्त्तीनी, भगवान् शंकरप्रिया वाराणसी से कीटानुकीट,  
अकिंचन दीनबंधु का प्रणामाशीर्वाद ! शं च । जब से आपने  
गया अद्वादि का सविधि संपादन कर भगवचरण सरोरुहों  
के दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल और सुफल करने के लिये  
श्री जगद्दीशपुरी को प्रस्थान किया आपका संगल संवाद  
प्राप्त नहीं हुआ । निश्चय नहीं है कि आप वहाँ कब तक  
निवास करेंगे और दक्षिण यात्रा का आपने किस प्रकार क्रम  
स्थिर किया है । अस्तु ! कितनी ही आवश्यक बातें ऐसी हैं

जिनकी सूचना आपको जितनी शीघ्र मिल जाय उतना ही आपको अधिक संतोष होगा ।

“प्रधान वक्तव्य यही है कि उस धुरहू नामधारी नर पिशाच को अपनी करनी का फल मिल गया । परमेश्वर यहाँ का यहाँ वर्तमान है । अब उसे आजीवन भारतवर्ष की मुण्यभूमि का दर्शन न मिलेगा । ऐसे नराधमों से देश जितना शून्य हो उतना ही कल्याण है । उसने अपने यावत् अपराध अपने ही मुख से खीकार कर लिए । जो घटनाएँ मुझे नसीरन रंडी के द्वारा विदित हुई थीं वे लगभग सब की खब सत्य निकलीं । उसके साथ उसके पतवारू, कतवारू और नसीरन को भी दंड मिल गया । खूब ल्लान बीन के अनंतर कल्पना नगरी के न्यायालय ने दृध का दूध और पानी का पानी न्याय कर दिया ।

“आप बाबा भगवानदास से कह दीजिए कि अब उसे चिंता करने की आवश्यकता नहीं रही । उसका जैसा विमल चरित्र है वैसा भगवान् सबको दे । निरपराध भगवानदास जिस मिछ्या कलंक से भयभीत होकर दिन रात कुढ़ा करता था उसका कर्ता धुरहू साबित हुआ । प्रयाग में आप लोगों ने जिस साधु की मुश्कें कसते हुए आवलोकन किया था वह धुरहू ही था । वहाँ सिपाहियों के पहरे में से भाग आया था किंतु अंत में उसकी कलई खुल गई । उस नन्हें से बालक का केवल जंवर के लालच से गला धोंटकर प्राण लेनेवाला धुरहू है । भगवानदास ने उसका सत्कार करके अपनी थैली क्या

( ११३ )

खोई मानों काषाय बख्त पर कलंक लग गया । उसका आतिथ्य करना सचमुच साँप को दूध पिलाना था । उस दुष्ट ने ऐसा घोर पाप करके संन्यासाश्रम से लोगों का विश्वास उठा दिया ।

“वह वास्तव में नृशंस है, कृतन्त्र है और घोर पापी है । उसने जिस हाँड़ी में खाया उसी में छेद करना चाहा । यदि साध्वी प्रियंवदा उसका पुत्रवत् पालन करके उसका मैता, कुचैला उठाने में घृणा करती तो वह विद्या में लिपट लिपट कर अन्न जल विना विलविला विलविलाकर तड़प तड़पकर कभी का मर जाता किंतु उसको जब माता पर हाथ पसारते हुए लज्जा न आई तब वह अवश्य नीचातिनीच है, पशु पक्षियों से भी गया बीता है । उसने स्वर्य स्वोकार कर लिया कि—

“मेरी आँख प्रियंवदा पर बचपन से ही थी । जिस समय वह जननी बनकर प्लेंग की ओर पीड़ा के समय मेरा पुत्र की तरह पालन पोषण करती थी उस समय भी मैं उसे बुरी नज़र से देखता था । ह्या एक बार मैंने अपनी पाप वासन: तृप्त करने के लिये खोटी चेष्टा से, खोटा प्रस्ताव करके उसे छंड़ा भी परंतु जब उसका रुख न देखा तब सन्निपातवाले रोगी की नाई वाही तवाही बक्कर उसका संदेह निवृत्त कर दिया । उसके ऐसे मारुभाव का बुरा बदला देकर दीन दुनिया से भ्रष्ट हो जानेवाला मैं हूँ । वैसे ही रेल-पथ में एक बार

जनानी गाड़ी में और दूसरी बार प्रथाग स्टेशन पर उसे छोड़कर हँसा देनेवाला भी मैं ही हूँ ।

‘आपको शायद विश्वास न होगा कि जब प्रियंवदा ने इतने दिन मातृभाव से मेरी सेवा की थी तब उसने मुझे रेल-गाड़ी में, प्रथाग स्टेशन पर और अंत में नौका में पहचाना क्यों नहीं ? इसमें उस विचारी का कुछ दोष नहीं । वह तो वह किंतु यदि मैं भेप बदल लूँ तो मेरे माता पिता, मेरी छोटी और देवता तक मुझे नहीं पहचान सकते । मैं केवल भेप ही नहीं बदलता हूँ किंतु भाव बदलने का, आकृति बदलने का और बोली बदलने का मुझे अच्छा अभ्यास है । मैंने इस काम के लिये सामान इकट्ठा करने में हजारों रुपए फूँक छाले हैं, बड़े बड़े उस्साहों की ठोकरें खाई हैं । इससे आप नमक सकते हैं कि प्रियंवदा को बचपन में जब मैं उससे डसके मैंके पर मिला करता था तब और था, प्लेग के संकट से जिस समय उसने मेरे प्राण बचाए तब और, रेल में मैंने जब उससे छोड़ छाड़ की तब और, और नाव में मैं दिखलाई दिया तब और, किंतु जब मैं पकड़ा गया तब उसने मुझे पहचान लिया था ।

‘रेल-यात्रा में जब वह मेरी मीठी मीठी बातों से कावू में आती दिखलाई न दी तब अबश्य मैंने उसे बचपन की भलक दिखला दी थी । उसके हँस कर, रोते रोते मुसकुराकर “निपूता यहाँ भी था मरा ।” कह देने का भी यही कारण था । आप शायद पूछेंगे कि बचपन की ऐसी कौन सी बात

थी जिसके स्मरण होते ही दुःख के समय भी, भय की बिरियाँ भी प्रियंवदा हँस पड़ीं । उसके पति को यह भेद मालूम होगा तब ही उन्होंने मेरे ऐसा अनुचित वर्ताव करने पर भी हँसकर टाल दिया नहीं तो वे अवश्य मुझे प्रयाग के स्टेशन पर पीटे बिना न छोड़ते । काँतानाथ को मेरी हरकत अवश्य बुरी लगी थी । तब ही उन्होंने मेरी जातें और धूंसों से खबर ले डाली । उनकी जातें और धूंसे अब तक कसकते हैं । उनके चेहरे के भाव से स्पष्ट होता था कि उन्हें प्रियंवदा के हँसने से उस पर संदेह हो गया है ।

‘अच्छा आप यह पूछेंगे कि वह बचपन की कौन सी बात थी जिसे सुनते हो प्रियंवदा हँस उठी । बात कुछ नहीं थी । कुछ बात हो तो कहूँ ! बात यही थी—“मेरी में का बेर !” आप शायद इससे यह समझ वैठें कि उसने कभी मेरी में से जठान कर बेर खा लिया होगा । नहीं ! यो बात नहीं थी । वह जन्म से ऐसे घर में पली थी कि यदि उसके माता पिता को इस प्रकार का भूठा भी संदेह हो जाय तो वे उसे गोमूत्र पिलाते पिलाते और गोबर खिलाते खिलाते अधमरी कर डालें ।

‘बात इस तरह पर थी कि जिस समय मेरी उमर तेरह चौदह वर्ष की और उसकी सात आठ वर्ष की होगी, मैं अपने पिता के साथ उसके गांव में सात आठ महीने रहा था । हम दोनों के घर एक दूसरे से बिलकुल सटे हुए थे और हजार मुझे पिताजी मारते पीटते परंतु मुझे आवारा भटकने के

सिवाय पढ़ने लिखने से कुछ मतलब नहीं था । बुरी संगति में बैठने से मेरी नियत खराब हो गई थी और उसी कच्ची उमर में चाहने लगा था कि मैं प्रियंवदा को अपनी प्राणप्यारी बनाऊँ ! परंतु जाति-भेद के कारण, और मेरे दुराचार से यह बात एकदम असंभव थी । उस इसी लिये उस कच्ची कोपल को ही तोड़ खाने का मैंने इरादा किया । इस इरादे से मैं उस छेड़ा करता था, उसके साथ बुरी बुरी चेष्टाएँ करता था और बुरे बुरे प्रस्ताव करता था परंतु वह केवल सात आठ वर्ष की बालिका क्या जाने कि मेरा क्या मतलब है । आजकल सात आठ वर्ष की लड़कियाँ भी खाटी संगति में रहकर सुनने सुनाने से, देखने भालने से बहुत कुछ जान जाती हैं और गालियों का पाठ पढ़ाकर अपड़ लियाँ उन्हें सब बातों में पहले से होशियार कर देती हैं किंतु उस तक इसकी हवा भी नहीं पहुँची थी । जब मैं उसे छेड़ता तो वह अपने भोलेपन से या तो हँस दिया करती थी या बहुत हुआ क्षो निपूते, निगोड़े और मुए की गाली देकर, पत्थर मारकर भाग जाती थी । किंतु ऐसे गाली और पत्थर खाने ही में मुझे आनंद था ।

‘हाँ ! तो “मेरी में के बेर” की घटना इस तरह पर हुई कि एक दिन उसके पिता ने पेंसिलें खरीदने के लिये उसे पैसा दिया । बालिका तो थी ही, पैसे कोआँचल से बांधने की जगह वह उसे उछालती उछाल ती जाने लगी । पैसा संयोग

से मोरी में गिर गया । मोरी में पड़ा हुआ पैसा वह कदापि न उठाती परंतु इधर उधर अच्छी जगह में गिर गया हो तो उठा लूँ, इस इच्छा से जब वह उसे आँखें फाढ़कर ढूँढ़ रही थी तब ही मैं वहाँ आ पहुँचा । मैं उसे अकली पाकर “जान साहब” कह दिया करता था और वह भी इसका मतलब न जानकर नाराज होने के बदले हँस दिया करती थी । उस दिन जब उससे मैंने ऐसा कहा तो उसने “अथ” से लैकर “इति” तक सारा किसासा सुनाने के अनंतर “मैया तू भी हूँढ़” कहकर रो दिया । मैंने उसे दिलासा देकर गोदी में उठाया, अपने रुमाल से उसके आँसू पोछे और “जान साहब रोओ मत ! पैसा गया तो तुम्हारे लिये रुपया हाजिर है ।” कहते हुए जेब में से रुपया निकालकर उसे देते हुए ज्योंही मैंने उसके गालों का चुंबन करने के लिये मुँह फैलाया त्योंही वह मेरी गोदी में से छटककर भागी और यह कहती हुई भागी कि “निपूता यहाँ भी आ मरा ।” बस इससे मैंने समझ लिया कि यदि यह अपने बरवालों को खबर दे देगा और इस बात को मेरे पिता जान जायेंगे तो पिटते पिटते मेरी जान निकल जायगी । मैं भूठी बातें बनाकर अपना बचाव कर लेने में उस्ताद हूँ । बस इसी समय मैंने उससे कह दिया कि मोरी में से बेर उठाकर यह खा रही थी, मैंने इसे पकड़कर छोन लिया । बस इसी लिये पिटने के डर से मुझ पर इलजाम लगाती है । बास्तव में वह माता पिता की मार

से बहुत डरती थी। इस कारण उसने अपने घरवालों से सब हाल छिपाया। मुझे इस बहाने से उसे क्षेडकर राजी करने का अच्छा मौका मिल गया। “भारी में का बेर” कहकर मेरी देखा देखी और भी लड़के लड़की उसे चिढ़ाने लगे और यों उसकी चिढ़ पड़ गई।

‘अब मैं अपने किए पर बहुत पछताता हूँ और यदि सरकार मानकर मुझको इस बार जमा कर दे तो आगे से कुकर्म न करने की कसभ भी खाता हूँ.....’

\* \* \* \* \*

पंडित दीनबंधु के पत्र में इस प्रकार की बातें पढ़कर कांतानाथ बहुत ही अपने मन में लजित हुए। एक साध्वी पतिक्रता माता समान भाभी के निष्कर्लंक होने पर उसके चरित्र पर संखेह करने पर वह पछताए और प्रियंवदा के चरणों में सिर रखकर उन्होंने बारंबार जमा मांगी। “अंत भला सो भला!” कहकर प्रियंवदा ने देवर को संतुष्ट किया और यों उसके चित्त में जो एक मिथ्याभिशाप की चिंता की आग सुलगा करती थी वह दीनबंधु के पत्र से बुझ गई। उसने रात्रि के समय प्राणनाथ के चरण चापते चापते उनका चित्त प्रसन्न देखकर यह सारा प्रसंग सुनाने के अन्तर हँस कर उनसे कहा—

“नाथ, अब मेरे जी में जी आया। अब जीकर आपके चरण कमलों की सेवा करना सार्थक है। यद्यपि आपने

( ११६ )

कई बार मुझे संतुष्ट भी कर दिया था और आपने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि आप मुझे निर्देष समझते हैं परंतु जब तक छोटे भैया का संदेह न निकले, मेरा दुख दूर नहीं होता था, मुझे दिन रात कल नहीं पड़ती थी । ”

“ हाँ बेशक ! ऐसा ही है । चलो अच्छा हुआ । उसका भी संदेह निकल गया । ”

“ जी हाँ ! उनका संदेह तो निकल गया परंतु आपने वनारस में ही सब के सामने इस बात को प्रकाशित क्यों न कर दिया ? यहाँ तक कि आपने प्रकाशित न करने का कारण भी न कहा । क्या मुझे चिढ़ाने के लिये ?

“ नहीं ! तुम्हें चिढ़ाने के लिये नहीं ! केवल इसलिये कि यदि यह बात अपराधी के मुँह से प्रकाशित हो तो अधिक अच्छा । ”

“ अच्छा ! अब मैं समझौ ! परंतु अच्छा हुआ उस दुष्ट को भी सजा मिल गई । ऐसे पामर को फाँसी पर लटकाना चाहिए था । ”

“ हाँ जैसा करता है वैसा पा लेता है । अब हमें क्या मतलब ! और मेरी समझ में जन्म भर दुख पाना फाँसी से भी बढ़कर सजा है । बक्कीलों की दलील ने कानूनी वारीकी से उसे बचा लिया । ”

“ कानूनी वारीकी क्या ? ”

( १२० )

“ और अपराध तो उसके प्राणदंड देने योग्य थे ही नहीं ।  
उस बच्चे को मारने का अपराध था । उसमें उसका इरादा  
खालित न हुआ होगा । वस यही कानूनी बारीकी !”

“खैर, हो गया ! गया दुष्ट काले पानी !”

‘ कहीं जावे । भगवान् अब भी उसे छापा करे ।  
यातनाएँ ओगने से वह सँभले और फिर कभी ऐसे पापों में  
प्रवृत्त न हो । सब के अलौ में अपना भला है ।’

‘ हाँ बेशक शत्रु पर क्षया करनी ही सच्चा हिंदूपन है ।’  
इस तरह बातें करते करते दोनों सो रहे ।

## प्रकरण—५८

### राग में विराग

अनेक मास तक भक्तिपूर्वक भारत के अनेक तीर्थ स्थलों में विचरकर दुनिया का अनुभव और परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के अनेंतर पंडित जी वर आ गए हैं। यात्रा का फल भी इन्हें अच्छा मिल गया। प्रियंवदा की मनोकामना पूर्ण हो गई। भगवान् ने उसको पुत्र प्रदान किया। सुखदा के भी गिरते गिरते सँभल जाने पर, उसके पश्चात्ताप से, उसके अटल ब्रत ने और उसके प्रायशिच्चत्त ने पितृपिंड का भक्षण करने के केवल एक मास के भोतर ही भीतर शुभाश्रा का वीजारोपण कर दिया। वीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष और वृक्ष में पुष्प लगकर फल भी उसे मिल गया। फल भी ऐसा वैसा नहीं। मधुर फल। प्रियंवदा के कमलानाथ और सुखदा के इंदिरानाथ के जन्म होने में केवल तीन मास सब्रह दिन का अंतर था। पंडित प्रियानाथ जो ही घर में कर्त्ता धर्ता और वह दृढ़ सनातन धर्मावलंबी। गौड़बोले ने जब शुभ संतान होने का भार उन पर डाल दिया और जब उनका सिद्धांत ही यह था कि संस्कारहीन बालक किसी काम के मर्ही होते, उनके पैदा होने से न होना अच्छा है, वे सचमुच अपने पुरखाओं को तारने के बदले स्वयं नरक में

पड़कर उन्हें भी घर घसीटते हैं, तब दोनों बालकों के लिये सीमंत, पुंसवन आदि संस्कार यदि ठीक समय पर शास्त्रविधि से किए गए हों तो आश्रय क्या ? यों संस्कार सब ही किए गए और खो भी आडंबरशृङ्खला क्योंकि पंडित जी को दिखावट पसंद नहीं, बनावट पसंद नहीं । केवल शास्त्रीय संस्कार ही नहीं बरन् उनकी इच्छा थी कि गर्भधारण करने के समय दंपती के शुद्ध चिज हों, उनके मन में विकार न हों, शरीर में दैहिक, दैविक और ऐतिक विकार न हों । गर्भधारण करने के समय से खो की इन सब बातों से रक्षा की जाय । वह सदा प्रसन्न बदन, प्रसन्न मन रहे, कोयले, राख, खपरे और अखाद्य पदार्थों का सेवन न करने पावे । काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और शोकादि विकारों से रहित रहे तो अवश्य ही संतान उत्तम होगी । पैदा होने के समय से बालक के अंतःकरण में खोटे संस्कार न पैदा होने देने चाहिए । पंडित जी ने प्रियंवदा को अच्छी तरह समझा दिया, कांतानाथ को अमुक अमुक प्रथों का अवलोकन करने का संकेत कर दिया और कुछ वति से और कुछ जीजी से सुखदा ने भी जान लिया ।

बस इन बातों के पालन करने का फल यह हुआ कि दोनों बालक रूप, गुण संपन्न पैदा हुए । अब सुखदा प्रियंवदा को जीजी कहकर पुकारती है और वह उसे कभी बहन, कभी छोटी और कभी बहुत प्यार में आ जाती है तो सुखदिया

( १२३ )

कह देवी है । दोनों में सगो बहनों से भी बढ़कर प्रेम है । यों मूर्ख, लड़ाकू और कलहिनी खियाँ लड़ाई मोल ले लेकर आपस में उत्तम पड़ती हैं । इवा से लड़ने लगती हैं । सुखदा भी पहले इन बातों के लिये सरनाम थी । परंतु अब इनमें न पैसे के लिये लड़ाई है, न बालकों के लिये लड़ाई है और न काम काज के लिये । काम काज करने के लिये “मैं करूँगी ! मैं करूँगी ” की कभी प्रेमपूर्वक उत्तमत हो जाय तो जुझी बात है किंतु सब अपना अपना काम पहले से कर लेती हैं । अपना करके दूसरी का भी करने दौड़ती हैं । “रुपए पैसे और खर्च की बात आदमी जाने । हमें कुछ मतलब नहीं । जो काम हमारे जिम्मे के हैं उनका ही निपटना कठिन है ।” यही दोनों की राय है । अब काम से अवकाश निकालकर सुखदा जीजी से पढ़ना लिखना सीखती है, सीना पिरोना सीखती है और दस्तकारी के अनेक काम सीखती है । बालकों कं पालन पोषण में जौकर नौकरानियों तक छो यह मालूम नहीं होने पाए कि कौन किसका बचा है । उन बच्चों में भी न मालूम क्यों नैसर्गिक प्रेम है । दोनों खाते साथ हैं, सोते साथ हैं, जागते साथ हैं, रोते साथ हैं और दूध पीने का भी उनका एक विचित्र ढंग है । एक बच्चा जब एक घूँट पी लेता है तब दूसरे की ओर इशारा करता है । हजार कोशिश करो किंतु जब तक दूसरा एक घूँट न पी ले तब तक वह कटोरी मुँह को छूने तक नहीं देता ।

उनका ऐसा प्रेम द्वेषकर पंडित पंडितायिन में कुछ हँसी भी होती है। उनकी सख्त ताकीद है कि कभी कोई काम ऐसा न करो जिससे थालक चिड़चिड़ा हो जाय। खबरदार किसी ने छरने की, भूठ बोलने की और इस तरह की बुरी आदत डाली तो! रात को यदि उन्हें पेशाब पायखाने की वाधा हुई तो रो रोकर माता को जगा देंगे परंतु कपड़े बिगड़ने का वास्ता नहीं। मैले कुचले से उन्हें बचपन संही बृशा है। दोनों बच्चे ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यों त्यों शक्ति के अनुसार शारीरिक परिश्रम की उनमें आदत डाली जाती है। अब वे खूब दौड़ धूप करते हैं, चर्जिश करते हैं, गेंद बल्ले खेलते हैं और धीरे धीरे बलिष्ठ, हष्ट पुष्ट और सदाचारी, माता पिता के भक्त बनते जाते हैं। शिष्टों का सत्कार, समान से प्रेम और छोटों पर दया उन्हें सिखलाई जाती है। नित्य ग्रातःस्मरण करना, परमेश्वर की भक्ति करना उनके कोमल अंतःकरण में ठेठ से ही अंकित कर दिया गया है। जब से उनका उपवीत हो गया है स्नान संध्या उनका प्रधान कर्तव्य है। उनकी मजाल नहीं जो इन कामों में अतिकाल कर दे। पंडित जी को मारने पीटने से पूरी पूरी बृशा है इसलिये कोई उन पर हाथ नहीं उठाने पाता परंतु इसका यह भतलब नहीं कि वे दुलार में आकर बिगड़ जायँ। शिष्टों का नाराज होना ही उनके लिये भारी भय है।

उनकी शिक्षा दीक्षा का कार्य गौड़बोले के सिपुर्द है। पंडित जी ने उनको हिदायत कर दी है कि आवश्यकता और

( १२५ )

समय के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन भले ही कर दिया जाय पर तु बालकों को उसी ढंग की शिक्षा मिलनी चाहिए जैसी “हिंदू गृहस्थ” में हरसहाय को दी गई है। जब तक विश्वविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली का उचित संशोधन न हो जाय तब तक पास का पुछला लगाना वह चाहे अनावश्यक, निर्धक, निकर्मा, हानिकारक और बोझा ही क्यों न समझे किंतु जब आजकल परीक्षा के बिना योग्यता की नाप नहीं होती और हर जगह सार्टिफिकेट रूपी लकड़ी की तलवार अपेक्षित होती है तब स्कूल और कालेज की शिक्षा दिलाए विना काम न चलेगा। इस बात को पंडित जी अच्छो तरह जानते हैं किंतु “हिंदू गृहस्थ” के अनुसार बालक का सदा-चारी, धार्मिक और कार्यकुशल बनाने के लिये, कमाऊ पृत बनाने के लिये जिन बातों की आवश्यकता है उन्हें पहले घर पर सिखा पढ़ाकर तैयार कर देना चाहिए। इसी उद्देश्य से पंडित जी ने दोनों बालकों को पहले घर पर शिक्षा दिलाई और फिर परीक्षा दिलाकर डिगरियाँ दिलाईं।

इस तरह तैयार होकर क्योंकर बड़े कमलानाथ और छाटे इंदिरानाथ परमेश्वर की भक्ति में, माता पिता की सेवा करने में, कुदुंब का पालन करने में और लोकोपकार में प्रवृत्त हुए, कब और किस तरह से कहाँ किस किस के साथ उनके विवाह हुए और कैसे उन्होंने दुनिया की नीच ऊँच छेखकर अनुभव प्राप्त किया, सो नमूना खड़ा कर देना एक जुदे उप-

( १२६ )

न्यास का विषय है। मैं नहीं कह सकता कि इस बात का यश किसे मिलेगा। हाँ साहित्य का मैदान तैयार है और लेखनी के धोड़ों की बाग भी ईश्वर की कृपा से अब एक नहीं, अनेक लेखकों के हाथ में है। यदि इस कार्य में किसी को सफलता का यश लेना हो तो कल्पना के भरोसे अच्छी खासी “राम लक्ष्मण की जोड़ी” तैयार हो सकती है, बाल्मोकीथ रामायण के से मर्यादापुरुषोत्तम नहीं क्योंकि उसमें कल्पना का लेश नहीं, वह उपन्यास नहीं इतिहान है। रामलीला के से राम लक्ष्मण नहीं क्योंकि उसमें भगवान् के चरित्रों की छाया है किंतु आजकल के समय के अनुसार ही भाइयों की जोड़ी, सज्जनों की जोड़ी, धार्मिकों की, लंकोपकारकों की जोड़ी की कथा कही जा सकती है।

अस्तु! यहाँ इतना अवश्य लिखना चाहिए कि अपनी योग्य संतानों को निरखकर पंडित, पंडिताधिन, कांतानाथ और सुखदा राग में प्रवृत्त नहीं हो गए हैं। कांतानाथ जब छोटे भाई और सुखदा जब छोटी बहू हैं तब उन्हें औरों के आगे हिंदू ग्रहस्थों की प्राचीन परिपाटी के अनुसार प्रेम विहूल हो जाने का अवसर ही क्यों मिलने लगा! दंपती जब अकेले होते हैं तब धापस में आमोद प्रमोद की बातें करते हैं, हँसी दिल्लगी करते हैं और अपने लड़के का प्यार भी करते हैं किंतु भाई भौजाई के समक्ष नहीं, बड़े बूढ़ों के सामने नहीं। कभी बालक का हँसना बोलना देखकर भौजाई के सामने कांता-

नाथ की कली कली खिल उठती है । रोकते रोकते वे मुस-  
कुरा भी उठते हैं परंतु प्रियंवदा से चार नजरें होते ही शर्मा-  
कर भाग जाते हैं और यदि विनोद में विनोद बढ़ाने के लिये  
हँसकर उसने बुलाया भी तो “भाभी तुम भी लड़के से  
हँसी करती हो ! तुम माता के बराबर हो ! तुम्हें ऐसी हँसी  
शोभा नहीं देती ।” कहकर आगे झुका लेते हैं । बस इस  
तरह की लज्जा से हिंदू गृहस्थ का आनंद है, इसमें भले घर  
की शोभा है । कुछ इससे बड़ाई नहीं कि बड़ों के सामने,  
“बेटा, सुन्ना, लाला, राजा !” कहकर बालक के गालों का  
चुंबन करें, पति पत्नी हँस हँसकर आपस में बातें करें ।

खैर ! प्रियंवदा एक साथ दो दो बालकों को निरखकर  
यदि आनंद में, सुख में मग्न है, यदि वह फूलें अंग नहीं समाती  
है तो अच्छी बात है । भगवान् ने उसे अतीव अनुग्रह करके  
वर्षों तक राह तकते तकते ऐसा सुख प्रदान किया है और  
वह उसका उपयोग करती है किंतु इससे यह न समझना  
चाहिए कि पह पतिसेवा से उदासीन हो गई है । लोग  
कहते हैं कि प्रेम में द्विधा विष रूप होती है । परंतु दोनों  
प्रेमपात्रों के प्रेम ही दो भिन्न प्रकार के हों तब द्विधा कैसी !  
फिर “आत्मा वै जायते पुत्रः” इस सिद्धांत से जब वह प्यारे  
पुत्र की चाल ढाल में, रहन सहन में, बोल चाल में और सूरत  
शकल में स्वामी की छाया देख रही है तब कहना पड़ेगा कि  
परमेश्वर के अवतार की जैसे छाया अंतःकरण की दूरवीन से

देखते पर मूर्ति में दिखलाई देता है और दर्शन होते ही साक्षात् करने का अनुभव हो उठता है वैसे ही वह क्षण-क्षण में पुत्र के शरीर में पतिदर्शन का आनंद लूट रही है, किंतु जैसे भगवान् को साक्षात् दर्शन होते ही मनुष्य को मूर्ति की अपेक्षा नहीं रहती उसी तरह पति का दर्शन होते ही वह अपने आपे को भूल जाती है, पुत्र को भूल जाती है और सब कुछ भूल जाती है । बस जिधर देखो लधर पति परमात्मा ।

इस तरह यदि पाठक प्रियंवदा में राग का उदय समझ लें तो उनकी इच्छा है । राग स्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है । पातिक्रत का प्रधान प्रयोजन ही राग है और इस प्रकार का राग ही साध्वी ललनांगों की गति है क्योंकि पति को जब वे साक्षात् परमात्मा मानती हैं तब वहाँ उनकी गति है । जब कीड़ा भैरे के भय से ही भ्रमर बन जाता है तब इस तरह पति की आत्मा में पक्षी अपनी आत्मा को जोड़ दे तो क्या आश्चर्य ! इसी लिये पति पक्षी के द्वा भिन्न भिन्न शरीर होते पर भी पक्षी अर्द्धाग्नी कहलाती है । यदि ऐसा न हो तो देनों के शरीर को सी नहीं दिया जा सकता, देनों का खड़ा चीरकर एक दूसरे से जोड़ नहीं दिया जा सकता ।

किंतु पंडित जी स्त्री-सुख में, पुत्र-सुख में और गृहस्थान्नम में मम रहने पर भी 'जल कमलवत्' अलग हैं । समय पड़ने पर वह यदि राग दिखलाते हैं तो इद दर्जे का और बुरी बातों से उनका द्वेष दिखलाई देता है तो सोमा तक, किंतु उनके

अंतःकरण में न राग के लिये स्थान है और न द्वेष की वहाँ तक गुजर है । जब वह अपने कर्तव्यपालन में पके पंडित हैं तब कोई उनके बर्ताव को खेलकर नहीं कह सकता कि वह कच्चे दुनियादार हैं किंतु यदि किसी के पास किसी का मन परखने का कोई आला हो, यदि “एक्स रे” जैसे पदार्थ की सृष्टि से शरीर के भीतरी भाग की तरह मन का निरीचण करने की किसी को सामर्थ्य हो तो वह कह सके कि उनका अंतःकरण इन बातों से विलकुल कोरा है । उसमें भगवान् की भक्ति, प्रभु के चरणारविदों से प्रेम ओतप्रोत, लबालब भरा हुआ है और कहना चाहिए कि जिस मनुष्य में यह बात हो, ऐसी आलौकिक अनिर्वचनीय अखंड संपदा जिसे प्राप्त हो वह सचमुच ही जीवन्मुक्त है, उसके लिये वानप्रस्थ आश्रम की आवश्यकता नहीं, उसके लिये संन्यास कोई पदार्थ नहीं ।

लोकाचार में पड़े रहने से यदि किसी को इस बात की धाह मिल जाय तो उनके इस ब्रह्मसुख में विद्व उपस्थित हो इसलिये वह अपने मन के भावों को गुप्त रखते हैं । काशी, प्रयाग, मथुरा और पुरी तथा गया की भाँति उनके भक्ति-रसामृत का प्याज़ा किनारे तक, सर्कि उतार भरा रहने से कभी कभी भलक भी उठता है और जब भलक उठता है तब लोग उनको न परखकर उन्हें पागल भी समझ बैठते हैं, किंतु उन्हें इन बातों से कुछ मतलब नहीं । वह इधर दुनियादारी में खूब रँगे हुए हैं और उधर प्रेम सरोवर में

( १३० )

गोते लगाया करते हैं। उनका सिद्धांत यही है किंतु वह  
अपने मन को—

“पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य  
दिङ्मंडलं ब्रजसि मानस चापलेन।  
आंत्या तु यातु विमलं न तद्वात्मनीनं  
तद्वद्वद्वा संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥”  
की रट लगाकर प्रबोध दिया करते हैं।

## प्रकरण—५६

### ब्राह्मणों की जीविका

“अभी तो आपको यहाँ आए जुम्मा जुम्मा आठ ही दिन तुए हैं ! अभी से उतावल ?”

“आठ दिन क्या थोड़े हैं ? मुझे तो आठ दिन आठ युग के बराबर बीत गए । खालो बैठे दिस पहाड़ के समान व्यतीत होता है । फिर जिस आदमी का घर नहीं, बार नहीं, जोरु नहीं, जाता नहीं, पैसा नहीं, कौड़ी नहीं—उसका विश्राय ही क्या ? और काम ही क्या ? “जहाँ पड़ा मूसल वहाँ खेम कूसल” नित्य कमाना और नित्य खाना ।”

“नहीं महाराज ! आपके कुछ भी क्यों नहीं ? सब कुछ है । यह घर आपका है, हम सब आपके हैं, आप बड़े हैं, पूज्य हैं, मुरब्बा हैं । आप बड़े भाई के समान हैं, उनसे भी बढ़कर । फिर ऐसा नहीं हो सकता कि हम आपका यहाँ से जाने दें । घर ठाकुर जी का है, हमारा क्या है ? जैसे आप वैसे हम ।”

“सचमुच आपका स्नेह अद्वितीय है । मैं भी आपको छोड़कर नहीं जाना चाहता । दुनिया में मेरा है ही कौन जिसके पास जाकर माथा मारूँ ? नसीब से कहीं सिर भी ढुखने लगे तो कोई पानी पिलानेवाला नहीं । शरीर छूट जाय तो उठाकर जला देनेवाला नहीं ! पड़ा पड़ा सड़ा करूँ

ता कोई खबर पृछनेवाला नहीं ! परंतु यहाँ बिना काम काज के, खाली बैठे रोटियाँ तोड़ना मुझसे नहीं बन सकेगा .”

“नहीं ! नहीं ! आप कभी रोटियाँ तोड़ना न समझिए । भगवान् के घर में आप अधिक और मैं कम । फिर आपके लिये काम भी मैंने सोच लिया है । वास्तव में काम बिना आदमी निकलना हो जाता है, किसी काम का नहीं रहता, चिलकुल रही । जो कुछ काम नहीं करता वह पाप करता है । और हम पैदा भों तो काम करने के लिये, कर्तव्यपालन के लिये हुए हैं, भोग विलास के लिये नहीं । सच पृष्ठों तो अपने कर्तव्यपालन में जैसा सुख है वैसा और किसी में नहीं । इसके सामने त्रिलोकी का राज्य मिट्टी है, लाख रुपए के नोट रही हैं, पोदशी रमणी धूल है । जो आनंद अपने कर्तव्य-पालन में सफलता हो जाने पर होता है वह सचमुच अलौकिक है । यदि हम लोग इस बात में दृढ़ हो जायें तो बस हमने विश्व का जीत लिया । सफलता और निष्फलता, परिणाम परमेश्वर के हाथ सही किंतु हमें फल की आकांक्षा पर राग द्वेष छोड़कर काम करते रहना चाहिए ।”

“हाँ ! आपका कथन सही है । मैं भी ऐसा ही मानता हूँ । परंतु काम क्या सोचा है ? देखूँ तो मैं उसे कर सकता हूँ या नहीं ? क्योंकि जब मैं जानता कुछ नहीं तब ऐसा काम ही क्या होगा जिसे मैं कर सकूँ ? हाँ थोड़ा बहुत कर्मकांड अवश्य जानता हूँ परंतु अब इससे गुजर होना कठिन है ।

( १३३ )

प्रथम तो हिंदुओं के दुर्भाग्य से अब इससे श्रद्धा ही उठती जाती है फिर जो कुछ, थोड़ो बहुत, वची बचाई है भी उसे मूर्ख ब्राह्मणों का दल नष्ट कर रहा है ।”

“वेशक आप ठीक कहते हैं। अब केवल इस पर आधार रखना अच्छा नहीं। संस्कृत अवश्य पढ़नी चाहिए, कर्मकांड में अच्छों योग्यता प्राप्त करनी चाहिए और जो भावुक यजमान मिल जाय तो उसे कराना भी चाहिए। किंतु कर्मकांड सीखना अपना पेट भरने के लिये नहीं है। वेदादि शास्त्र पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना और दान देना, लेना ब्राह्मणों के ये क्षमा कर्म हैं। वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना केवल अपने कल्याण के लिये और वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना उपजीविका के लिये है। मेरी समझ में अपने कल्याण के लिये तीनों कर्म तो करने ही चाहिएँ। इनके बिना ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, किंतु जीविका के लिये जिन कर्मों की विधि है यदि उन्हें कम कर दिया जाय, रोक दिया जाय तो फिर भी ब्राह्मणों का पहले का सा आदर हो सकता है। जो वस्तु दुर्मिल है, अधिक परिश्रम से मिल सकती है उसका आदर अधिक होता है। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों की पर्याकृटियों पर बड़े बड़े राजा महाराजा महीनों तक जा जाकर जब टकराते थे, खुशामद करते थे तब कहीं मुशकिल से वे लोग यज्ञ कराना, दान लेना स्वीकार करते थे। पितामह ब्रह्मा के समझाने पर महर्षि वशिष्ठजी ने सूर्यवंश की पुरोहि-

ताई केवल इसनिये स्वीकार की थी कि उसमें भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रजी का जन्म होनेवाला था । यदि अब भी हम लोग दान दक्षिणा के लिये यजमान के द्वार पर घटों तक रिरियाने, हाथ फैलाने से हाथ खैंच लें तो निःसंदेह उन अृषियों का सा आदर पा सकते हैं, जो लोग हम पर स्वार्थ का कलंक लगाते हैं उनके मुख पर अच्छी खासी चपत लग सकती है । भगवान् विश्वभर है । राजा और रंक को भूखा जगाता है, भूखा सुलाता नहीं । ब्राह्मणों में अब भी सैकड़ों, हजारों ऐसे हैं कितनी ही जातियाँ पंसी हैं जो ब्राह्मणों की वृत्ति नहीं करतीं, इस जीविका से पेट नहीं भरतीं, उनका योगक्षेत्र अच्छा तरह चलता है । वे दान लेनेवालों से अच्छे हैं । यदि हम लोग केवल आत्मकल्याण के लिये वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करें, यथाशक्ति यज्ञादि कर्म करते रहें और योग्यों को दान दें तो ऐसे धंधे से जिनके करने से ब्राह्मणत्व पर दोष न आवे अपना अच्छा तरह निर्वाह कर सकते हैं । अब भी ब्राह्मणों में भगवान् भुवनभास्कर का सा ब्राह्मणत्व प्रकाशमान है । ऐसा करने से उनका महत्व बढ़ेगा, और उनके सद्गुचार से, उनकी सुशिक्षा से, उनकी निःस्वार्थता से संसार उनके पैरों पर मस्तक नवावेगा । अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है, अब भी नई रोशनीवालों में, नई नई उन्नतियों, राजदर्भारों में, और और वर्णों से ब्राह्मणों का ऊँचा आसन है । जो कार्य वे कर रहे हैं वे कर सकते हैं, वह दूसरे वर्णों से

( १३५ )

नहीं हो सकता । भारतवर्ष की यावत् उन्नतियों के अगुआ अब भी ब्राह्मण हैं । अँगरेजी की उच्च शिक्षा ब्राह्मणों में अधिक है ।”

“निसंदेह यथार्थ है परंतु तब करना क्या चाहिए ? क्या ज्योतिष पर गुजारा किया जाय ? इससे भी तो पेट भरना कठिन है । जब फल ही नहीं मिलते तब लोग देने भी क्यों लगे ? और भूठी बातें बनाना अच्छा नहीं !”

“हाँ मैं भी मानता हूँ । बास्तव में यदि फलित ज्योतिष का ठोक ढंग पर न लाया जायगा तो किसी न किसी दिन यह शाल भी हमारे हाथ से गया समझो । लोगों की अद्वा उठती जाती है और जिन्होंने अँगरेजी की थोड़ी सी ए, बी, सी, डी, पढ़ ली है वे इसका मर्म न समझकर इसे वाहियात असंभव बतलाकर पूर्वजों की निंदा करते हैं, ब्राह्मणों को ठग बतलाते हैं । परंतु क्या इसमें दोष शाल का है ? क्या शाल ही मिथ्या है ? अथवा उसका संस्कार दूषित हो गया है ? अथवा पढ़नेवालों की ही अयोग्यता है ? मेरी समझ में शाल का दोष नहीं क्योंकि वह सत्य है । निर्विवाद सत्य है । हाँ ! पढ़नेवाले अवश्य अपराधी हैं । वे पढ़े बिना ही अथवा ज्योतिष का ककहरा सीखकर ही भूठ मूठ मीन, मेष, वृष अपनी अँगुलियों पर गिनकर भविष्यद्वक्ता बन बैठते हैं । उनके स्वार्थ से हिंदुओं के सब धर्मकार्य धूल में मिले जाते हैं ।”

“परंतु क्या फलित ज्योतिष के फल न मिलने के अपराधी वे ही लोग हैं ?”

( १३६ )

‘ नहीं ! शास्त्र के संस्कार भी दूषित हो गए हैं । अहा ! अपने पूर्वजों की प्रशंसा किए बिना मैं आगे नहीं बढ़ सकता । जो काय लाखों रुपया खर्च करके, हजारों की दूरबीनों द्वारा आज दिन विद्रोह युद्धायन करते हैं वह उन्होंने आज से हजारों वर्ष पहले नरसल और मिट्टी से सिद्ध कर लिया था । आज भी एक अच्छा ज्योतिषी ऑवल नरसल की नलिका को मिट्टी में गाढ़कर प्रहों का वेद कर सकता है । यदि उसके पांथी पत्रे छीन लिए जायें तो जनशून्य जंगल में बैठे बैठे वह ऑवल इन्हीं की मदद से आज बतला सकता है कि तिथि, वार, नक्षत्र, योग और कर्ण क्या हैं ? तारीख क्या है ?’

“अच्छा ! यह तो आपने गणित के गुण गाए । परंतु फलित में दोष आने के कारण ?”

“गणित के दोष से ही फलित दूषित हो गया है । बात यह है कि भास्कराचार्य को प्रहों का वेद कर सूर्यमिछांत बनाए लगभग छः हजार वर्ष हो गए । नक्षत्र स्थिर होने पर भी थोड़े थोड़े अपने अपने स्थानों से हटते हैं । उन्होंने इस हटाहटी का निश्चय करके लिख दिया है कि इतने वर्षों में इतना अंतर निकाल देना चाहिए । प्रहलाघवकार ने जब प्रहों के उद्यास्त में उनकी गति में अंतर देखा तब उसने उसी आधार पर गणित करके, वेद कर नहीं, वह अंतर निकाल दिया । इस बात को भी तीन हजार वर्ष हो गए । बस पंचांगों में प्रहों का उद्यास्त न मिलने का यही कारण है । इसी

( १३७ )

कारण ब्रह्म का समय नहीं मिलता, ब्रह्मों के उद्दयास्त नहीं मिलते, अरु भूमि अंतर रहता है। ऐसे अंतर की भूल से मुहूर्त ठीक नहीं दिए जाते और जन्म का समय ठीक न होने से जन्मपत्र के, वर्ष के फल नहीं मिलते।”

“तब इसके उपाय ?”

“उपाय दो हैं। एक विलायत के पंचांगों से अपने पंचांगों का मिलान कर अंतर निकाल लेना। काशी के और दक्षिण के ज्योतिषों “नाटिकेल् अलमानक” की सहायता से पंचांग बनाते हैं। उनका गणित मिलता जुलता है परंतु जैसा मेल ब्रह्मों का प्रत्यक्ष वेध करने से हो सकता है वैसा नहीं। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उज्ज्यन्नी, जयपुर अथवा काशी की वेधशाला में प्रसिद्ध प्रसिद्ध ज्योतिषों इकट्ठे होकर दूर-दौनों के सहारे ब्रह्मों का वेध करें और तब नया करण ग्रंथ तैयार किया जाय। एक बार बंबई में समस्त ज्योतिषियों ने इकट्ठे होकर विचार भी किया था परंतु उत्साहहीनता से, धनाभाव से और आपस की फूट से “टाय टाय फिस” हो गई। अब भी इस बात का जितना ही शोब्र उद्योग किया जाय उतना लाभ है। पंचांगों की अशुद्धि से हमारी बड़ी भारी धर्महानि है और फलित शास्त्र ही भूठा पड़ा जा रहा है सो धलुए में !”

“परंतु मेरे लिये आपने क्या उपाय सोचा है ?”

“आपके लिये दो उपाय हैं और वे दोनों साथ साथ संपादन हो सकते हैं। सबसे प्रथम तो चिकित्सा। हमारे

आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा करने में प्रजा का जितना लाभ है उतना कियी और तरह से नहीं । इसकी दवाइयाँ सस्ती, सुलभ और बच्चे बच्चे की जाती हुई हैं । लाभ चाहे देरी से हो नितु होता चिरस्थायी है । परमेश्वर ने यहाँ के निवासियों की जैसी प्रकृति बनाई है उसी के अनुसार इस देश में औपचारिक भी उत्पन्न कर दी है । डाक्टरी इलाज का फायदा चाहे मिनटों ही में क्यों न दिखलाई दे जाय परंतु उससे सदा के लिये रोग का विनाश नहों होता और देशों दवाइयाँ बोझारी को जड़ से उखाड़ डालती हैं । सैकड़ों बार के अनुभव से यह साबित हो गया है कि जहाँ अस्थम्य होकर, हृताश होकर, बड़े बड़े डाक्टर हाथ खेंच लेते हैं, जहाँ हजारों रुपया इमलिये भाड़ में जा चुकता है वहाँ टक्कों की देशी दवा से लाभ होता है । फिर डाक्टरों की फीस और दवा की कीमत का स्वर्च भी तो बहुत भारी है । इधर हमारे राजा महाराजा, धनवान्, देश-हितैषी आयुर्वेद के लिये एक पाई स्वर्च नहीं करते और उधर हर तरह से डाक्टरी को मदह मिल रही है । जिसकी सहायक सरकार उसका कहना ही क्या ? नहीं तो देशी इलाज के आगे अब तक उसका पैर रही न जमने पाता ।”

“हाँ ! राजा महाराजा और देशहितैषियों की उदासीनता है सही परंतु विशेष दोष वैद्यों का है । न वे विश्वा पढ़ते हैं और न इलाज करना जानते हैं । बस अटरम सटरम दवा देकर टका कमाने से काम । रोगी जीये चाहे मरे । बस

( १३८ )

अपना उल्लू सीधा करने से मतलब ! इसी का परिणाम है कि वैद्यों का इलाज बंद करने के लिये कानून बनने की नीबत आ रही है और जो अब भी हम न चेतें तो इस शास्त्र का भी लोप ही समझ लो ।”

“बेशक ! वैद्यों में योग्यता का अभाव इसका प्रबल कारण है । सचमुच ही लोग लातें मार मारकर उसे हुवो रहे हैं परंतु और भी दो बातों की त्रुटियाँ हैं । एक हमारे शास्त्रों में चीर फाड़ का विस्तार नहीं है । सुश्रुत में है परंतु समय के अनुसार युगोपियन विद्वानों ने इस कार्य में जो असाधारण उन्नति की है उसके लाभ से हमें वंचित न रहना चाहिए । आयुर्वेद आप का पढ़ा हुआ है, आप इसमें सिद्धहस्त हैं, अनुभवी हैं और यशस्वी हैं, रोगी को आपके दर्शन होते ही आधा आराम हो जाता है । इस यात्रा में गुर्खे कई बार इसका अनुभव हो गया । फिर आपकी दवा भी असाधारण है । अस्पताल में नौकरी करके आप चीर फाड़ का भी अनुभव प्राप्त कर चुके हैं । इधर संस्कृत ग्रंथों का मेरे यहाँ टोटा नहीं और उधर छाकटरी की बढ़िया से बढ़िया पुस्तकें मराठी और गुजराती में भाषांतरित हो चुकी हैं । जहाँ कहाँ औंगरेजी की मशद चाहिए वहाँ मैं तैयार हूँ । बस इसलिये यह काम सिद्ध समझिए ।”

“अच्छा ! दूसरी त्रुटि से आपका मतलब शायद ओषधियाँ अच्छी न मिलने से हैं ! बेशक दवाइयों का बड़ा औंधार्धुध है । भील पंसारी से और पंसारी वैद्य से कह दे सो हो दवा । वह

दवा चाहे सर्जीवनी की जगह छलाइल हो क्यों न हो । लदवा को वैय पहचानते हैं और न पंसारी ! और दवा आनेवाले निरे गँवार, जंगली । फिर पंसारी के यहाँ की दवा कभी मड़ती नहीं, बिगड़ती नहीं । चाहे कीड़े पड़कर वह दवा विष हो क्यों न हो जाय परंतु जब तक औली खाली न हो जाय, नई मँगाने का काम क्या ? ”

“इसका उपाय मैंने यह सोचा है कि जो आपधियां बाजार में अच्छी मिलती हैं उन्हें द्विसावर से थोकबंद मँगवा लेना, जो आबू हरिद्वार और बदरीनारायण की ओर मिलते-वाली हैं उन्हें वहाँ से इकट्ठो इकट्ठो मँगवाना और जो दुर्मिल हैं उनके बाजें का पता लगा लगाकर अपने बगीचे में लो देना । इसके लिये जितनी आवश्यकता होगी उतनी जमीन निकाल दो जायगी ।”

“और रुपया ? पहला सबाल रुपए का ही है ।”

“महाराज, यह बड़ा पुण्य कार्य है । इसमें गरीबों को अब वह भी मिलेगा । औपशालय में आनेवाले की दवा मुफ्त । किसी अभीर के घर जाकर आप इलाज करें अथवा वह मदद के नाम से रुपया दे तो लेने में कुछ हानि नहीं और जब इसका यश फैल जायगा तो विना माँगी मदद मिलने लगेगी । काम ऐसा होना चाहिए जो दुनिया के लिये नमूना बन जाय । हमारे काम की कोई नकल करे तो खुशी से । जो सीखना चाहे उसे सिखाने को तैयार ।”

( १४१ )

“हाँ हाँ ! यह ठीक ! परंतु रूपए का सवाल बड़ा टेढ़ा है । सर्वारम्भास्तंदुलप्रस्थमूलाः ।”

“पंडित जी, रूपयों की आपने अच्छां चिंता की ! इसके लिये ठाकुर जी मदद देंगे । अभी काम आरंभ करने के लिये हजार दो हजार बहुत हैं । बस जितना चाहिए कांतानाथ से लो लीजिए । मैंने उससे कह दिया है । यदि सुकार्य से लगाते दिनें आ जावे तो कल का आता आज ही सही ! रूपया हाथ का मैल है और धर्म में लगाने से बढ़ता है, घटना नहीं ।”

“यह आपकी डाकारता है, परोपकार है और मुझ अकिञ्चन पर दया है ! परंतु हाँ ! दूसरा उपाय ? प्रथम तो उन साधु वालक वालिका को पढ़ाना । क्यों यही ना ?”

“हाँ ! यह तो परोपकार के लिये है परंतु मेरी भूठी प्रशंसा करके काँटों में न घसीटो । प्रशंसा आदभी के लिये जहर है । वह जीते ही मार डालती है । दूसरा काम ब्राह्मणों का मुख्य धर्तीव्य शिक्षा देना, उपदेश देना है । नियत समय पर भगवान् के मंदिर में लोगों को धर्म का उपदेश देना, और जो विद्यार्थी आपसे जिस शास्त्र का अध्ययन करने आवे उसे जी खालकर पढ़ाना । विद्यादान और ग्रोषधिदान का बड़ा पुण्य है । साथ ही संस्कृत ग्रंथों का भाषांतर करना भी ।”

“वास्तव में आपने उपाय अच्छे बतलाए । यथाशक्ति योड़ा और बहुत सबका संपादन करूँगा और जब हर बात में सहायता देने के लिये आप जैसे महात्मा तैयार हैं फिर

सफलता में संकेत भी नहीं किंतु महाराज, प्राचीन संस्कृत ग्रंथ मिलते ही कहाँ हैं ? दुष्टों ने उन्हें जला जलाकर हम्माम गर्म कर डाला । सच पूछो तो जितनी हानि पुस्तक जला देने से हुई, हमारी क्या दुनिया की हुई, वह कभी मिटने की नहीं । रुपए इकट्ठे हो सकते हैं परंतु पुस्तकों नहीं ।”

“ हाँ ! ( रोकर ) हाय ! वास्तव में बड़ा अनर्थ हो गया । परंतु जो बात निरुपाय है उसका दुःख ही क्या ? अब भी जितने ग्रंथ मिल सकते हैं उनका उद्घार करने से आँसू पुछ सकते हैं । परंतु महाराज अंत में मैं फिर कहूँगा कि जिनके लिये विद्या से जीविका चलाना कठिन है वे व्यापार करके, कारीगरी सीखकर और लौकरी करके अपना पेट पाल लें । ब्राह्मण होकर जूते बनावें और शराब की दूकानें खोलें, ऐसी बातें अवश्य निर्दनीय हैं किंतु जो लोग आत्रों से, कुपात्रों से पैसा माँगकर ब्राह्मणत्व का अनादर करवाते हैं उनसे मैं संध्यावंदनादि में निपुण पाँच रुपए की भैयागरी, चपरासगरी और दरबानी करनेवाले को अष्ट समझता हूँ । मेरी समझ में देशोपकार की लंबी लंबी छोंगे हाँकनेवाले भ्रष्ट ब्राह्मणों से वे हजार दर्जे अच्छे हैं । संतोष मात्र चाहिए क्योंकि ‘असंतुष्टा द्विजा नष्टा’ ।”

बस लेखक की कल्पना ने इस उद्योग की सफलता का सीमा तक पहुँचा दिया । अब कार्य में प्रवृत्त होना पाठकों का काम है ।

---

## प्रकारण—६०

### घर चौपट हो गया

“बुद्धिया ने पीठ फेरी और चरखे की हो गई हंडी।” वास्तव में भगवान्दास का घर चौपट हो गया। बूढ़ा गँवार था, पढ़ा लिखा चिल्लकुल नहीं और आजकल की “उन्नति” की पुकार उसके कानों तक भी नहीं पहुँची थी, परंतु उसने अपनी छाटी सी गृहस्थी में, अपनी साधारण हैसियत में और अपने गरीब घर में, दिखला दिया था कि गृहराज्य कैसा होता है। जो घर का प्रबंध कर सकता है, जिसकी आज्ञा का पालन बेटे बेटी करते हैं और जो अपने घर की उन्नति कर सकता है वही देश का प्रबंध भी कर सकता है। प्रबंधकर्ता में पहली योग्यता यही होनी चाहिए। पोथे रट रटकर माथा खाली करने की जितनी आवश्यकता नहीं उतनी “इंतजामी लियाकत” चाहिए। लोग कहते हैं कि “संयुक्त कुदुंब” की प्रणाली से देश चौपट हो रहा है, कोई भी उन्नति नहीं कर सकता, किंतु उसकी बूढ़ी बुद्धि ने साबित कर दिखाया कि संयुक्त कुदुंब गृहराज्य है, राज्य-प्रबंध का नमूना है। यदि देश में ऐसे कुदुंबों की अधिक संख्या हो तो स्वभाव से ही एकता बढ़ जाय, मुकदमेवाजी आधी रह जाय और यही देहाती पंचायत का मूल सूत्र है। शरीर के जितने कार्य हैं उन्हें न

अकेला माया कर सकता है और न दो हाथ। जब देशों  
हँडियाँ मन की इच्छा के अनुसार मिल जुलकर अपना  
अपना काठ करती हैं तब ही शरीर चलता है। “याज्ञवल्क्य  
सृति” में देशप्रबंध की व्यवस्था कुलपति, कुलपतियों पर मामपति  
और फिर बढ़ते बढ़ते राज्यपति, राजा, इस तरह की है।  
“जिन तें सँभल सकत नहिं तन की धाती ढीली ढाली, देश-  
प्रबंध करेंगे यह कैसी है खाम खियाली।” किसी ने यह  
लोकोक्ति खूब फवती कह डाली है।

अस्तु ! भगवानदास के गृहराज्य का यह पहला दृश्य है  
किंतु दूसरे “सीन” ने बिककुल तखता उलट दिया। बूढ़े  
के जाते ही पहले सीन पर परदा पड़ गया। उसके मित्र ने  
जहाँ तक उससे बन सका, तन मन और धन से सँभाला परंतु  
उसकी अधिक दिन दाल न गलने पाई। जो कार्य कर्तव्य-  
बंधन से बांधकर नहीं किया जाता है उसकी चेपा चापी  
बहुत समय तक नहीं चल सकती। “काठ की हँडिया बार  
बार नहीं चढ़ती है।” बूढ़े के जाते ही गृणला दृढ़ गई,  
दबाव जाता रहा, कर्तव्य का चूर मूर हो गया और कलह  
का, स्वार्थ का, मनमुटाव का और इर्ष्या का सीन खड़ा हो  
गया। सृदु, सधुर और मंद प्रेम से यह अत्याचार नहीं  
देखा गया इसलिये वह भी अपना बधना बोरिया लेकर चलता  
बना। अब भाई भाई में नहीं बनती है, लुगाइयों लुगाइयों में  
गाली गलौज होती है, खसम जोरू में मार पीट होती है और

एक दूसरे को देखकर आँखों में से शत्रुता की चिनगारियाँ फैकने लगता है। बैल भूख के मारे कल मरते आज ही क्यों न मर जाय उन्हें कोई पानी पिलानेवाला नहीं, जंगल से घास काटकर लानेवाला नहीं। खेती सूखती है तो क्या पर्वाह ? चरस चलाकर सोचने का परिश्रम हमसे नहीं होता है। क्या हम किसी के गुलाम हैं जो बारिश में, धूप में और जाड़े में खेती की रखवाली के लिये जंगल में रहे ? और बवेरा खा जाय तो ? नहीं नहीं ! हमारे फूल से बब्बे बछड़ों को चराने नहीं जायेंगे। लगान का तकाजा है तो जाने सेवा ! चाचा जी उसे मात्रिक बना गए हैं। कोई छाती कूटे तो भले ही कूटे। आज बस हल्लुवा पूरी उड़ेगी। बस इस तरह का गदर मच गया। बाहर के चोर नहीं किन्तु घर की घर में चोरियाँ होने लगीं। कोई गङ्गा बंचकर रुपया हजम कर जाता है तो किसी ने बैल ही बेचकर कीमत अंटी में दबाई है। खेती सूख गई। बीज तक बसूल होने का ठिकाना नहीं। लगान की किस्त चढ़े अर्सा हो गया। कुर्की की नौबत आ पहुँची। दो चार बैल मर गए। एक भैंस ऐसी भरी जो ढेढ़ सौ में भी सस्ती थी। कई एक गाएँ ठंठ हो गईं। पूँजी पसारा बिगड़ गया। एक चूल्हे के सात चूल्हे हो गए। बेटे अलग, पोते अलग और जो इकट्ठे हैं उनके मन अलग, स्वार्थ अलग। और इसलिये “जहाँ सुमति वहँ संपत्ति नाना। जहाँ कुमति तहँ विष्पति निदाना !” का कोटा सामने पुकार पुकार कहने

लगा कि कलह आ, अर्तव्यशून्यता का और बड़े बृद्धों के अभाव का यही नमूना है। जो काम बृद्धे ने वर्षों के परिश्रम से, अनुभव से तैयार किया था वह महीनों में, घंटों में नष्ट हो गया। वर्षों की सिहनत से पाला पोसा फूलदार, फलदार वृक्ष मूर्खता की आँधी ने जड़ से उखाड़कर फेंक दिया।

इस फोटो से पाठक समझ सकते हैं कि बृद्धे, बुद्धिया ने जब वापिस आकर घर में पैर रखा तब धौले दुपहर के भव्य प्रकाश के बदले भर भादों की ताराशून्य धोर छँधियारी रात थी। सबने सब ही की आ आकर बाप के आगे चुगलियाँ खाईं। सब ही अपने अपने मन से निर्विप हैं और उनके सिवाय दूसरा दोषी। सब से अधिक दोष सेवा पर, उसकी बहू पर मढ़ा गया; जिनु ऐसे भूठे अपराधों के लिये अपना सफाई दिखलाकर वे कसम खाने तक की तैयार हैं, गंगा उठाने में सज्जद हैं। इन दोनों की गवाही भगवानदास के अंतरंग मित्र ने भी दी। उसने आदि से अंत तक एक एक का पृथक् पृथक् इतिहास सुनाकर स्पष्ट कह दिया कि इन दोनों का कुसूर बिलकुल नहीं। इन दोनों ने जिस तरह विपत् भेली है परमेश्वर ही जानता है। भूखों मर मरकर रात काटी है। इनके पास दाना चबाने के लिये भी कुछ नहीं रहा। इतना कहकर उसने सलाह दी कि—“तुम अपने सामने सब के हिस्से बाँट दो। नहीं तो इनमें सदा ही जूता चलता रहेगा। ये अदालत तक पहुँचकर, अमले

( १४७ )

के, वकीलों के घर भरेंगे और चार ही दिन में देख लेना कि जिस घर का आतंक आज दिन बस्ता भर मानती है उसी के आदमी दाने दाने को तरसेंगे, औरों की ढोरें चराते फिरेंगे, हल जोतते फिरेंगे ।”

बूढ़े की इच्छा नहीं थी कि उसके सामने सब बैठे पौते अपने जोखुबच्चों को लेकर अलग हो जायें क्योंकि वह जानता था कि जिस घर की साथ आज लाख की है वह खाक की हो जायगी । तिनके तिनके इकट्ठे करके रस्सी बनाने पर मतवाला हाथी भी बाँध सकता है किंतु वे ही तिनके जुड़े पड़ने पर एक चिंउटी को भी नहीं बाँध सकते । इस कारण उसे अपने मित्र की सलाह पसंद न आई । वह यात्रा के परिश्रम से, भूख प्यास सहकर यद्यपि थक गया था, चाहे उसे अब अधिक जीने की आशा नहीं थी और वह इस उमर को पहुँचकर अब घर की ओर से, दुनियादारी से उदासीन भी हो गया था और अब वह “सब तज और हर भज” की ओर अपना मन लगाए हुए था किंतु बूढ़ी हड्डियों में फिर जवानी का जोश दिखलाकर जी तोड़ परिश्रम से वह सब ठिकाने ले आया । लड़कों को दुनिया की नीच ऊँच दिखलाकर पंडित जी और गौड़बोले ने उन लोगों को बहुत समझाया और तहसीलदार ने भी धमका धमकूकर फिर वैसा ही ढंग भालने में पूरी सहायता दी । यों काम अवश्य चल गया परंतु चला चेपा चापी ही । जिस भगवानदास के नख में भी कभी रोग

नहीं था, जो नहीं जानता कि बुखार किसे कहते हैं वह इस मेहनत से अककर बीमार रहने लगा । इसकी बीमारी बढ़ते ही फिर बही गहरा । अब इसने समझ लिया कि मित्र की सलाह के अनुसार इन लोगों के हिस्से किए बिना मेरी आँख के सामने ही ये लोग “जूतम फाग” खेलेंगे । इसलिये उसने सबको इकट्ठा करके जो कुछ माल ताल जमीन जायदाद रूपया पैसा बचा बचाया था वह पाई पाई बराबर बाँटकर भगड़ा मेट दिया ।

यां घर के धंधे से निपटकर वह यथापि उनसे उदासीन हो गया किंतु उन्होंने भी अब इसको निरर्थक, रहा समझ लिया । “बूढ़ा मर जाय तो अच्छा ! अब यह काँटा ही है । इसके खर्च का वृथा ही बोझा है ।” वे खुला खुली कहने लगे । यूहे बुढ़िया को यदि जबर पीड़ा से कोई कराहते देखता है तो उसकी ओर से आँख बचाकर चला जाता है । सबेरे किसी ने रुखी सूखी रोटियां पहुँचा दीं तो पहुँचा दीं और भूल गए तो भूल गए । किसी का कर्ज थोड़े ही चुकाना है ? अब उसके पास फटे कपड़े और दूरी चारपाई के सिवाय कुछ नहीं है । एक लोटा केवल और है जिसमें सत्रह पैवंद लगते हैं । परंतु उसे इस बात का रंज नहीं है । माँ बाप यदि घंटे बेटी पर बहुत से बहुत नाराज हो जायें तो इतनी गाली दे सकते हैं कि जैसे तुम हमें बुढ़ापे में सताते हो वैसे ही तुम्हारे बेटे पोते तुमको सतावें । किंतु इस गाली में भी आशीर्वाद है । वह “जाही विधि राखै राम, ताही विधि

( १४६ )

रहिए।’ के अटल सिद्धांत को दृढ़ता से पकड़े हुए है और अपनी हालत में मस्त रहकर “राम राम” जपते हुए दिन रात निकाल देता है।

यों सज्जनों के सत्संग से बूढ़े बुढ़िया को हर्ष शोक नहीं है किंतु कष्ट देख देखकर उसके अंतर्ग मित्र का जी जला करता है। इतने दिनों के अनुभव से उसने ठहरा लिया है कि “यह राई रत्ती दे डालने का नहीं जा है। यदि भगवान् थोड़ा बहुत अपने पास रख लेता तो उसके लालच से उसकी वे खातिरें होतीं जिनका नाम !” बस इस विचार से वह एक दिन एक थैली लेकर आया। उसे सबके सामने बजाकर, खेलकर दिखाने के बाद भगवानदास के कान में कुछ कहकर उसने उसके नाम की चपड़ी की मुहर उस पर लगा दी और एक भंडरिया में उसे रखकर ताली बूढ़े की कमर में बाँध दी। अब लड़कों ने बहुतेरी चिनती की परंतु इस रकम का हिस्सा न किया गया। “जो हमारी सेवा करेगा वह पावेगा। और को एक कौड़ी नहीं।” कहकर उसने कड़ा हुक्म दे दिया। बस उसी समय से उसकी खातिरें होने लगीं। एक के यहाँ से खोर आती है दूसरा नया कपड़ा बनवा देता है और तीसरा आधी रात तक चरण चापता है। कोई पंखा भजता है तो कोई मक्खियाँ उड़ता है। माँ बाप की सेवा करने में एक दूसरे की बदाबदी, होड़ाहोड़ी होने लगी और बूढ़े बुढ़िया को हथेली पर थुका थुकाकर उनकी सेवा होने लगी।

यह सब छुछ हुआ और अब बृद्ध दंपती को अपनी संतान के लिये काँई विशेष शिकायत भी न रही परंतु जब अमर कहलाने पर भी देवताओं की उमर की अवधि है, जब जिसका नाम उसका नाश अवश्यंभावी है और जब ये दोनों जीवन की सीमा तक पहुँच चुके हैं तब यदि भगवानदास का काल आ जावे तो क्या आश्र्य ? वह मर गया और बिना किसी बीमारी विशेष के साधारण ज्वर आकर बात करते करते, “राम राम” की रट लगाते लगाते, मृत्यु की अमृत्यु वेदना के बदले हँसते हँसते मर गया, और ऐसी मौत कि जिसने खबर पाई उसके मुँह से यही निकला कि “ऐसी मौत भगवान् सबको दे । जिसे जन्म भर किसी से दीनता न करनी पड़े और जो ऐसे अनायास, बिना कष पाए मर जाय, उसका जीना और मरना दोनों सार्थक हैं । उसे अवश्य स्वर्ग मिलेगा । पुण्यवानों की यही निशानी है ।” खैर बूढ़ा तो मरा सो मरा किंतु बुढ़िया की अजब हालत हुई । वह सत्तर वर्ष की ढोकरी होने पर हड्डी कट्टी थी । उसे किसी तरह की बीमारी नहीं थी । परंतु पति परमात्मा का परलोकवास होते ही उसने भी सहगमन किया । पति के स्वर्गवास होने की भनक कान में पड़ते ही “अब मैं जीकर क्या करूँगी ? जहाँ वह तहाँ मैं ।” कहकर “राम राम” जपते जपते उसने भी शरीर छोड़ दिया । केवल पति-सेवा के सिवाय उसे कुछ मतलब नहीं था । वह विशेष बात भी किसी से नहीं करती थी बल्कि लोग कहा करते थे

कि उसकी समझ मोटी है परंतु आज उसने दिखला दिया कि पढ़ी लिखी औरतों से वह हजार दर्जे अच्छी निकली। दोनों की बैकुंठियाँ साथ निकलीं, दोनों एक ही चिता में जलाए गए और अपना कर्तव्य पालन करते हुए, दुनिया का यश लूटकर परमेश्वर की भक्ति करते हुए, सीधे स्वर्ग को सिधार गए। विद्या चाहे हो चाहे न हो। वह विद्या ही किस काम की जिससे परलोक न सुधरे परंतु अपढ़ होकर भी इन्होंने दोनों लोक सुधार लिए। वास्तव में ऐसे ही लोगों का जन्म सार्थक है। धन्य भगवानदास ! धन्य साध्वी ! तुम दोनों को धन्य है ! भारत में ऐसे ही सज्जनों की आवश्यकता है। पातित्रत की पराकाष्ठा है। सरकारी कानून भी परमेश्वर के कानून के आगे कुछ नहीं।

खैर ! दोनों की मृत्यु के बाद उनकी तरही हो जाते पर जब इनके बेटों ने थैली सँभाली तब रूपए की आशा में पैसे पाए। ये सब बाप के मित्र से लड़े भगड़े भी कम नहीं, यहाँ तक कि उस पर मुकदमा चलाने को तैयार हो गए किंतु जब भगवानदास का तहरीरी सद्यूत उसके पास था और जब इसका असली भेद हाकिमों को मालूम था तब उन लोगों की कुछ चली चलाई नहीं। हाँ ! जरा जरा सी बात पर वे लोग आपस में लड़ लड़कर फौजदारी करते और मुकदमे लड़ते लड़ते कट मरं। उनका पूँजी पसारा सब नष्ट हो गया और सचमुच उनके लिये वही अवसर आ गया जिसका बाप

( १५२ )

के मित्र को पहले से भय था । अब वे यौरों के यहाँ मज-  
दूरी कर करके अपने पेट भरते हैं, अपने किए पर पछताते हैं,  
माँ बाप को याद करके रोते हैं । इस विपत्ति के समय यदि  
कुछ सहारा है तो यही कि पंडितजी ने उन्हें बुला बुलाकर  
किसी न किसी काम में लगा दिया है । यों अंत में वे लोग  
अपने दुःख के दिन सुख से बिताने लगे हैं ।

---

## प्रकरण—६<sup>१</sup>

### मठाधीश साधु

पाठक यह न समझ लें कि पंडित प्रियानाथजी घर आकर उन साधु वालकों को भूल गए। वह भूलनेवाले मनुष्य नहीं वरन् यों कहना चाहिए कि वे ज्ञान की जांखें उठाकर अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेवाले थे। जिस काम में उन्होंने हाथ डाला उसे पार तक पहुँचा दिया। ऐसी प्रतिज्ञा ही क्यों करनी जिसका निर्वाह न हो सके ? और जब करनी तब पार उतारनी, यह उनका अटल सिद्धांत था। अस्तु ! जिस समय वे गाँव में पहुँचे उसी घड़ी उन वालक वालिका के लिये पहाड़ी टीकेवाली गुफा उन्होंने साफ करवाई, धूनी का, सीतल-पट्टी का, कंबलों का और जल का प्रवंध किया और जब उन दोनों की भिज्जा हो गई तब आप अग्नि जल लिया। अब जो कुछ इनके घर में बनता है उसमें इन दोनों के योग्य सिद्धान्त इनकी कुटी पर पहुँचा दिया जाता है। पंडित जी और गौड़-बोले पारी पारी से उनको जाकर नित्य सँभाल आते हैं। यों ये कभी कभी गाँव में भी आते जाते हैं परंतु नित्य नहीं, महीना बीस दिन में। पहले पहले लोग उनकी कुटी पर जा जाकर अपना अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिये प्रार्थना भी करते थे। कुसंग के लिये ललचाकर फँसानेवाले भी गए

परंतु न तो इन्होंने किसी से आंख उठाकर वार्तालाप किया और न पंडितजी ने इनके पास भीड़ इकट्ठी होने दी। यों धीरे धीरे अपना लाभ न होता देखकर लोग लुगाइयों ने अपने आप इनके पास जाना बंध कर दिया। अब शरीर के खटके से निपटकर स्थान करने के अनंतर आठ पहर में एक बार जो कुछ भिज्ञा आवे उसे गम्भीर करके खा लेने के सिवाय इन्हें कुछ काम नहीं। गुरु की बताई हुई काम-विकारों को शमन करनेवाली बृद्धी इस पहाड़ी पर भी बहुतायत से है। उसे ला लाकर यह अवश्य खाते हैं। और यों केवल चार घंटे की निद्रा के सिवाय इनका दिन रात भजन में बीतता है। बचपन से इनके गुरु ने “राम राम” का जो जप बतला दिया है उसे ही वे करते हैं और पद्मासन जमाकर गर्दन मुकाए, अपनी नासिका से चिपटती हुई पृथ्वी पर शुद्ध स्थान में लिखे हुए प्रणव पर हृदय की दृष्टि, चर्मचक्षु नहीं क्योंकि ध्यान के समय ये मुँदी रहती हैं, जमाकर ध्यानावस्थित रहते हैं। गुरु जी ने एक बात और बतलाई है। वह यह कि ध्यान भगवान् श्री कृष्णचंद्र की बाललीला की मूर्त्ति का करना। जब, जिस समय तुम्हारा ध्यान और तुम्हारा जप एक हो जायगा तब ही उस मूर्त्ति में से ध्रुव बालक की तरह भगवान् हरि तुमको प्रकट होकर दर्शन देंगे। इसमें उन्हें इतने बर्बाद उद्योग से कहाँ तक सफलता हुई सो इन्होंने किसी को नहीं बतलाया और ऐसे गापनीय मंत्र अधिकारी बिना किसी

( १५५ )

को बतलाने के लिये भी नहीं हैं । हाँ ! उन दोनों के मुख कमलों का निरीक्षण कर प्रत्येक विचारवान् सज्जन बतला सकता है कि तप उनके चेहरे पर भलकता है, कार्य की सिद्धि उनकी आँखों के सामने नाच रही है और संयम का कवच संसार के यावत् विकारों से उनकी रक्षा कर रहा है ।

ऐसे जितेंद्रिय, दृढ़मना और तपस्वी महात्माओं के लिये पुस्तक रटने की आवश्यकता नहीं । पुस्तक पढ़ना इसमें जानकारी लाभ करके कार्य का आरंभ करने के लिये है और ये अपने उद्योग में बहुत आगे निकल गए हैं किंतु गुरु-मुख से मंत्रोपदेश ग्रहण करने और इतनी सी क्रिया सीख लेने के सिवाय ये कुछ नहीं जानते हैं । हाँ ! ये जितनी इसकी साधना करते जाते हैं उतना ही आनंद बढ़ता जाता है । वस उस आनंद में आनंद बढ़ाने के लिये ही ये पढ़ने लगे हैं । गौड़बोलेजी ने अनध्याय को छोड़कर नियम इनकी कुटी पर जाना आरंभ कर दिया है । साधारण लिखना पढ़ना सीख लेने के अनन्तर उन्होंने पहले “विचार सागर” का मनन करवाया है, फिर “भगवद्गीता” का । किंतु इन दोनों का सीखना भी विलक्षण है । मानो ये पहले ही से उसे जानते हैं, पढ़ा हुआ पाठ भूल गए हैं सो पंडित गौड़बोले के पढ़ाने से पुरानी बातों का उन्हें स्मरण हो आता है । जिस विषय पर विचार करने में और विद्यार्थियों को महीनों लग जायें उसे ये दिनों में अपने मन पर टूट कर लेते हैं । भगवद्गीता के लिये ये

दोनों कहा करते हैं कि संसार में इसके बराबर कोई ग्रंथ नहीं। दुनिया के पर्दे पर ऐसा कोई अब तक पैदा नहीं हुआ जो इसके सिद्धांतों को मिथ्या सिद्ध कर दे। इसमें प्रवृत्ति भी है और निवृत्ति भी। यह गृहस्थों के लिये भी है और संन्यासियों के लिये भी। इसका मनन करनेवाला दुनियादारी में रहकर भी जीवन्मुक्त है। वस कर्तव्य की शिक्षा इसके समान किसी में नहीं। काम, कोष, मोह, लोभ और भद्र मत्सरादि विषों से छुड़ाने के लिये यह रामबाण द्वा है। कार्य करके भी न उसकी सिद्धि के लिये राग करना और न उसके प्राप्त न होने पर द्रेष। परमात्मा का स्वरूप इसमें बहुत अच्छी तरह दिखलाया गया है। हिंदूमात्र को इसे हिए का हार बना लेना चाहिए।

वस ! इन्होंने भगवद्गीता पढ़ लेने के अनन्तर योग ग्रंथों को विचारना आरंभ किया है। योग साधन के लिये केवल वाचनिक शिक्षा किसी काम की नहीं। इसमें साधना अधिक और पढ़ना कम और साधना का अभ्यास अच्छे गुरु के बताए बिना हो नहीं सकता। जो केवल पुस्तकों के भरोसे अथवा ऊटपटाँग गुरुओं से सीखकर प्राणायाम चढ़ाने लगते हैं उनमें भूल से अनेकों को मस्तक-विकार हो जाते देखा है, अनेकों को चूय हो जाते देखा है और अनेकों का शरीर फूट निकलता है। आस को रोकना मतवाले हाथी को बाँधना है। गौड़बोले यद्यपि इस विषय को विद्यार्थियों के चित्त पर ठसाने

की अच्छी योग्यता रखते थे और साधन से भी खाली नहीं थे किंतु उन्हें इस बात का दावा भी नहीं था कि मैं इस विषय में पारंगत हूँ । खैर जितना वह जानते थे उन्होंने इन दोनों को सिखाया । गुरु शिक्षा में गौड़बोले की शिक्षा को संयुक्त कर इन्होंने अभ्यास बढ़ाया और जो बात समझ में न आई उसे किसी महात्मा से सीखने के लिये उठा रखा ।

यों इन दोनों का समय अध्ययन, मनन और निदिव्यास-नादि में सदाचार के साथ वर्षों तक व्यतीत होता रहा । किसी प्रकार का विचेप नहीं, बिलकुल प्रलोभन नहीं । किंतु इस अवसर में एक घटना ऐसी हो गई जिससे इनके लाग को कसौटी पर कसने का मौका आया । घटना ऐसी वैसी नहीं, बस “इस पार या उस पार” का मामला था । यदि उसे ग्रहण कर लिया तो संसार लाग देने पर भी पक्का संसारी बनना पड़ा और छोड़ दिया तो एक सीढ़ी ऊँचे । बात यों हुई कि पंडित प्रियानाथजी ने एक दिन इस तरह प्रस्ताव किया—

“महाराज, आपको अपेक्षा तो नहीं है । जिसने संसार को तिनके के समान छोड़ दिया उसे अपेक्षा ही क्या ? और आप अपना कार्य साधन भी कर रहे हैं परंतु इसके साथ यदि आपके हाथ से लोकोपकार भी हो तो कैसा ?”

“हैं पिता ! हम तुच्छ प्राणियों के हाथ से लोकोपकार ? जब हम ही नहीं, जब हम लुहार की धौंकनी की तरह श्वास लेने पर भी मुर्दे हैं तब लोकोपकार कैसा ? हाँ इस

( १५८ )

मृतक शरीर से यदि चोल्ह कावे अपना पेट भर लें तो कुछ काम भी सही !”

“नहीं महाराज, आप जैसे तपखो यदि दुनिया का उपकार करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं और यह शरीर परोपकार के लिये ही पैदा हुआ है। काम यह है कि एक जगह मठाधीश की गदी खाली हुई है। उनके शिष्य तो हैं परंतु इस योग्य नहीं हैं कि अपना कर्तव्य पाल सकें। इसलिये कितने ही धार्मिक सज्जनों ने किसी योग्य व्यक्ति को वह गदी दिलाने का उद्योग किया है। मंरी समझ में आपसे बढ़कर योग्य नहीं मिल सकता इसलिये इस पक्ष को स्वीकार कर सनातनधर्म की सेवा कीजिए, धार्मिक हिंदुओं का उपकार कीजिए और इस छबती हुई नौका को पार उतारिए।”

“नहीं पिता ! यह काम मुझसे नहीं हो सकता ! “दो एक साथ न होवे रे भाथा, इंद्रियाँ पौष्णी और मोक्ष जाया।” ऐसा प्रस्ताव करके मुझे मत फैसाओ। प्रथम तो मैंने जन्म लेकर अभी तक किया ही कुछ नहीं फिर यदि कुछ बन भी पड़ा हो तो उसे धूल में मत मिलाओ। जो ऋशा थोड़ों को छोड़कर आजकल के आचार्यों की, मठाधीशों की, स्थिर जीविका पानेवाले अपद पुजारियों की और साधु वेशधारी मनुष्यों की हो रही है वही मेरे लिये तैयार है। संसार-त्यागियों को दुराचार में प्रवृत्त करने के लिये इसको शराब समझो। बस इस काम में पड़कर मैं दीन दुनिया दोनों का न रहूँगा। भाँग,

( १५८ )

गाँजा, चरस, चंदू तो उनकी साधारण सेवा है किंतु अब छिप छिपकर बोतलों भी उड़ने लगी हैं। अकेले दुकेले खियों से बातचीत करना तो उनमें दोप ही नहीं समझा जाता किंतु अब उनमें से अनेकों की व्यभिचार की, रंडीवाजी की भी शिकायत है। वे चोरी में फँसते हैं, डकैतों की मदद हेने का उन पर इलजाम लगता है और इनमें से यदि सब ही दोषों से किसी तरह बच जायें, बचना कठिन तो है परंतु मान लीजिए कि बच भी जायें तो द्रव्य संग्रह करने का, भोग विलास करने का, आडंबर बढ़ाने का और हुक्मसत करने और औरों से पैर पुजवाने का क्या कम अपराध है ? ”

“वास्तव में आपने जो दोष बतलाए वे यथार्थ हैं। थोड़ों को छोड़कर आजकल के आचारों, मठाधीशों और पुजारियों पर इस तरह के इलजाम लगते हैं और उनकी कितनी ही जगह सत्यता प्रमाणित होने से लोगों को कानून बनवाकर देवोत्तर संपत्ति सरकारी निरीचण में डालने के लिये आंदोलन करने का हौसला हुआ है। जहाँ इस तरह का दोप उपस्थित हो जाय वहाँ राजा के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता को मैं मानता हूँ। परंतु गवर्मेंट विदेशी है। वह हजार मरम्बन होने पर भी हमारे धर्म भावों को नहीं जान सकती इसलिये वह यदि कृपा करके इन बातों में हाथ नहीं डालना चाहती है तो हमारा उपकार ही करती है। परंतु आजकल के नवीन रोशनीवाले इसके पीछे आटा बाँधकर पड़े हैं। वे इस द्रव्य

संदेशोपकार का कुछ भी काम करना चाहें, परंतु मेरी सम्मति यह है कि दाता ने जिस काम के लिये जो जायदाद दी है वह उसी काम में लगनी चाहिए। गद्वी पर विद्वान्, धार्मिक, संयमी, जितेंद्रिय और सज्जन, निःस्पृही महात्मा के बैठने से संस्कृत की शिक्षा का प्रसार हो सकता है, शिष्यों को सदुपदेश मिलने का प्रबंध हो सकता है और यों धर्म-सेवा होने से उद्देश्य की सफलता हो सकती है।”

“जब संसार त्यागकर वैराग ही ले लिया तब उद्देश्य क्या ? गेरुआ कपड़े पहनकर, राख रमाकर, गुरु बनकर लाहक भेप को लजाना है ! चौथे आश्रम को लातें मार मारकर नष्ट भ्रष्ट करना है। शाल में संन्यासी को लिये इस तरह रहना कहाँ लिखा है ?”

“शाल में यदि न हो तो न सही। संन्यासी का धर्म यही है कि वह बन के कंदमूलों पर अपना गुजारा करे, नित्य तीन घर से अधिक भिन्ना न माँगे, तीन दिन से अधिक एक जगह न ठहरे और इस तरह भिन्ना न ले जिसमें दाता का जी दुखे। जो कुछ मिल जाय उसे जल में धोकर बिना स्वाद एक बार खा ले, दुनिया के रागद्रेष से अलग रहे और तत्त्वों का चितवन करता रहे। परंतु सहाराज, समय के अनुसार इन मठाधीशों की भी आवश्कता आ पड़ी। दुनिया का जितना उपकार इनसे हो सकता है उतना गृहस्थों से नहीं। विवारे गृहस्थों को अपने पेट पालने से फुरसत ही कहाँ है ? ऐसे

साधुओं का गोसेवा के लिये सबसे बढ़कर सुविधा है। गाँव में दस घर फिरकर आटा माँग लाए, उससे चार टिकड़ बनाकर ठाकुरजी को भोग लगाया और दिन भर गोसेवा, ठाकुरसेवा और भूले भटके सुमाफिरों के आतिथ्य के सिवाय कुछ काम ही नहीं। रात को भजन करना, लोगों को उपदेश देना और बालों को पढ़ाना। भारतवर्ष में लाखों गाँव होंगे। ऐसा कोई गाँव ही नहीं जहाँ मंदिर न हो। बस जहाँ मंदिर है वहाँ देव-पूजा के साथ धर्मपदेश का, धर्मशाला का, पाठशाला का और गोशाला का एक साथ काम निकलता था और खर्च केवल चार रुटी का। उस समय यह उपकार तो केवल छोटे मोटे मंदिरों से, मठों से था किंतु बड़े बड़े मठाधीशों, महंतों और आचार्यों का उपकार वैहद था। उनको भोग-विलास से बिलकुल बैराग्य था। कपड़े के नाम पर ही कोषीन, एक कंबल, बरतन के लिये तुंबी, कठौती और खाने के लिये भगवान् का जो कुछ प्रसाद मिल जाय वही बहुत था। बस सती सेवकों से अथवा जमीन जीविका से जो कुछ इकट्ठा हो जाय वह या तो गौओं की सेवा में, साधु महात्माओं के आतिथ्य में अथवा आए गए के सत्कार के लिये। दिन रात इस बहाने से लोगों को सत्संग मिलता था, उपदेश मिलता था, अध्ययन मिलता था और दवा मिलती थी। जिस समय भारत में इस तरह की व्यवस्था थी उस समय न धर्मसभाओं की आवश्यकता थी और न लेकचरबाजी की और न धर्म-

शालाएँ बनवानी पड़ती थीं । केवल इन्हीं की बड़ौलत, कंवल गुरुकुलों ही के कारण विना खर्च के अथवा नाम मात्र का व्यय करके वह काम निकलता था जिसके लिये विश्वविद्यालयों में, कालेजों में, पाठशालाओं, अस्पतालों में आजकल करोड़ों ही खर्च किया जा रहा है । वह शिक्षा असली शिक्षा थी, उसमें लोकव्यवहार के साथ धर्मचार था, उसमें आडवर का नाम नहीं और यह केवल दिग्गजावटी, धर्महीन और व्यवहारशून्य ! महाराज, मैं भी आपको फँसाना नहीं चाहता हूँ । आपको दबाकर मुझे स्वीकार कराना इष्ट नहीं है । जब आप प्रथम से ही दुनियादारी में नहीं पड़े हैं, जब आपने भोग की विरियाँ योग ग्रहण कर लिया है तब आप भले ही इन भमेलों में न पड़िए । परंतु महात्मा, अब समय वह आ पहुँचा है जिसमें आप जैसे ताणियों को धर्मप्रचार के लिये, लोकोपकार के लिये त्याग का भी त्याग करना पड़ेगा । यदि आप चाहें तो इस पद को स्वीकार करने पर भी राजा जनक की तरह विरागी बने रह सकते हैं । आप जैसे जितेंद्रियों से, तपस्वियों से और महात्माओं से यह काम जितना हो सकता है उतना दुनियादार स्वार्थियों से नहीं, ढोल के अंदर पोल-वाले आड़ंबरी लेकचरों से नहीं । और इसकी आवश्यकता भी बहुत बढ़कर है ।”

“पिता ! आपका कथन वास्तव में हृदय में हलचल मचा देनेवाला है । निःसंदेह बड़ा असर करनेवाला है । हाँ !

( १६३ )

ऐसा करने की आवश्यकता भी है और कुछ काम भी हो सकता है परंतु ( कोई इस मिनट तक आँखें मूँदकर विचार करने के अनंतर ) मैं इस काम के योग्य नहीं । मुझसे यह काम न हो सकेगा । पिता ! मुझे न फँसाओ ॥”

“अच्छा ! आपका इच्छा । आपको धन्य है । वास्तव में आप न फँसना । अब मैंने समझ लिया कि आप धन के, अधिकार के और प्रशंसा के लालच में आलेवाले नहीं । आप के पूर्व जन्म का संचय शीघ्र ही आपको पार लगा देंगा ॥”

इसका उन्होंने कुछ जबाब न दिया । जितनी देरी तक इन दोनों का संवाद होता रहा साध्वी साधुनी, साधु महाराज की बहन चुपचाप सुनती रहीं । वह अध्ययन के सिवाय कभी कुछ बोलती भी नहीं थीं । अब भी न बोलीं किंतु उनके मुख की मुद्रा से पंडित जी ताड़ गए कि भाई ने जो कुछ कहा है बहन की सम्मति से । इतना होने के अनंतर “नमो नारायण” करके उन दोनों के चरणों को प्रणाम कर पंडित जी घर आ गए । इसके अनंतर क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं । हाँ दूसरे दिन पंडित जी भिज्ञा लेकर जब उनकी कुटी पर गए तब वह जनशून्य थी । पंडित जी के दिए हुए वस्त्रों में से एक लँगोटी, एक धोती और एक तुंबी के सिवाय सब वहीं पड़ा हुआ था । वह वहाँ उन महात्माओं के दर्शन न पाकर रो दिए । कल की बात पर उन्होंने अपने आपे को बहुत धिकारा और आज से माधुसेवा

( १६४ )

बंद हो जाने पर ऐसे दुःखित हुए जैसे अपन पिता के चिर विद्योग पर । अस्तु ! उस दिन से पंडित जी को एक बार के सिवाय कभी पता न लगा कि वे कहाँ गए । उस बार भी यह सुना था कि वे दोनों हिमालय की गिरि-कंदरा में तंप करने के लिये चले गए । जिस मठ के लिये पंडित जी को ऐसा महंत रखने की आवश्यकता थी उसका क्या हुआ से भी लिखने की आवश्यकता नहीं । एकाध प्रकरण से काम न चलेगा और पोथी पहले ही पोथा हो गई । हाँ ! यदि कोई सुलेखक चाहे तो एक अच्छा स्वतंत्र उपन्यास लिख सकता है । इस पुस्तक से उसे थाढ़ा बहुत मसाला भी मिल सकता है ।

---

## प्रकरण—६२

### गोरक्षा का नवूना

छुट्टी के दिन पूरे होने पर है। जब नौकरी करनी ही निश्चित है अथवा यदि इस्तीफा देने की भी इच्छा हो तो क्या हुआ, चाहे जितना ऊँचे से ऊँचा ही पद कर्या न हो, परन्तु अंत में ही तो दूसरे की नौकरी। गवर्मेंट की सेवा करने में यद्यपि नौकरों के साथ अच्छा बर्ताव होता है, उनकी समय समय पर उचित होती है और उड़ापे में पेशन भी मिल जाती है परन्तु परिणाम में ही दासवृत्ति ही! सरकार की क्या, रजवाड़े की क्या, साहूकरों की क्या, चाहे गए बोते की भी नौकरी करो परन्तु “जी हुजूर! हाँ साहब! जी हाँ साहब!” कहकर मालिक की हाँ में हाँ मिलनी ही पड़ेगो। ऐसे ऐसे अनेक कारणों का अनुभव करके और अपने नियंत्रण में नैमित्तिक कार्यों में विनाशकर पंचित जी ने कांतानाथ से नौकरी का इस्तीफा दिलाकर घर के काम काज का बिलकुल बोझा उस पर डाल दिया। अब वह “स्याह करे तो स्याह और सफेद करे तो सफेद!” जो कुछ करे उसे अधिकार है। घर धन्धे में, कमाई में और सब ही कामों में नेक सलाह देकर रस्ते पर लगा देना, उसे इधर उधर न भटकने देना और उसे धन्धे के, व्यापार के अच्छे

अच्छे गुर सुभका हेना ही उनका काम है, और किसी वात से कुछ मतलब नहीं। काँतानाय भी ऐसा आदमी नहीं जो “मन मार्ना घर जानी” करे। वह जो कुछ करता है सब अपने बड़े भैया से पूछकर उनकी आज्ञा के अनुसार। उसके काम काज की समय समय पर जब उसके पास रिपोर्ट पहुँचती है तब दो काम पंडित जी अवश्य करते हैं। एक उसके अच्छे कामों की प्रशंसा करके उसका उत्साह बढ़ाना और दूसरे यदि उसके हाथ से कोई चूक हो गई हो तो उस पर उसे धमकाना नहीं, उसे बुरा भला न कहना। यदि वह स्वयं अपनी चूक पर पछतावे और वह पछताता ही है तो “कुछ चिंता नहीं ! जो काम करते हैं वे भूलते भी हैं। जो धंधा करता है उसके लिये नुकसान पहले और नफा पीछे !” कहकर वे उसका प्रबोध कर देते हैं। हाँ ! समय पाकर उस भूल का कारण बताकर आगे के लिये वे उसे चिता भी दिया करते हैं परन्तु वडे प्यार के साथ। इनके पिता ने यद्यपि दोनों भाइयों का वैमनस्य न हो इसलिये पहले ही से अच्छा प्रबंध कर दिया था किन्तु जहाँ राम भरत का सा रवार्थत्याग मूर्तिमान विराजमान है वहाँ वैसे प्रबन्ध की आवश्यकता ही क्या ? लड़ाई भगड़े वहाँ हुआ करते हैं जहाँ एक के स्वार्थ की दूसरे की गरज से टकरें होती हैं। परन्तु पंडित जी के घर में दोनों भाइयों का स्वार्थ दूध बूरे की तरह मिलकर एक हो गया। बहुस्नेह के दूध में खियां की लड़ाई

( १६७ )

की यदि खटाई पड़ जाय तो अवश्य दूध चूरा भो अलग हो सकता है परन्तु जहाँ प्रियंवदा और सुखदा सभी माँ-जाई बहनों से भी बढ़कर आपस में प्यार करती हैं वहाँ ऐसी खटाई का काम ही क्या ?

अस्तु ! इन लोगों की अच्छी निभती है । परमेश्वर ऐसी सबकी निभावे । जिस घर में भाई भाई का, पति पत्नी का, देवरानी जेठानी का ऐसा प्यार है वहाँ अवश्य देवता रमण करते हैं । वह स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

ये कांतानाथ घर के प्रवंध में, जमींदारी में और लेन देन में सुखैद हैं और पंडित प्रियानाथजी की छुट्टी समाप्त होने में केवल दो सप्ताह शेष रह गए । घर में आकर इन्हें कितने ही काम करने थे परंतु यात्रा के कारण न पहले अवकाश मिला और न अब । उस समय जाने की उतावल रही और अब थक जाने से सुखाने ही सुखाने में दिन निकल गए, यद्यपि घर आकर यह खाली एक दिन भी नहीं रहे । इन्होंने यहाँ आकर क्या किया सो विस्तार से प्रकाशित करने की आवकता नहीं क्योंकि गृहस्थ की छोटी सोटी बातें किसी से छिपी नहीं हैं । हाँ ! दो चार जो बड़े बड़े काम थे उनका दिग्दर्शन गत पृष्ठों में कर भी दिया गया है ।

अब अपनी नौकरी पर जा पहुँचने के पहले पंडित जी के लिये केवल तीन काम शेष रह गए हैं । प्रथम प्रियंवदा और सुखदा की सौंरी का समान रूप से प्रवंध करना । जब कांता-

नाथ वहाँ विद्यमान हैं तब इस बात की उन्हें चिंता नहाँ परंतु खियाँ याँ ही कोलल होती हैं फिर इन दिनों में उनकी वहुत ही नाजुक हालत हो जाती है। जब बिना विशेष कष्ट के बचा होते पर नहाँ धोकर जच्छा उठती है तब उसका दूसरा जन्म माना जाता है। इसलिये अच्छी अनुभवी हाई का तलाश कर देना, उपयुक्त गुहाँ को पहले से सूतिकागृह के उपयोगी बना देना और इस काम के लिये जिन ओषधियों की, जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है उन्हें पहले से ज़बाल लेना। परमेश्वर न करे, कर्मा वैद की आवश्यकता आ पड़े तो इत्ताज के लिये गौड़बोले जी वहाँ मौजूद ही थे। गौड़बोले की इच्छा थी कि “इन बातों का ज्ञान पहले से करा देने के लिये प्रियंवदा को आई पुस्तक आवश्य देनी चाहिए जिसे इकर वह तैयार रहे और अपनी देवरानी को भी समझा दे। वह पोथी किसी अनुभवी स्त्री की बनाई हुई हो तो अच्छा।” परंतु हिंदी में वहुत टटोल लगाने पर भी ऐसी पुस्तक का कहाँ पता न चला और मराठों, गुजराती वह जानती नहीं इसलिये गौड़बोले को मन मारकर रह जाना पड़ा। हाँ ! इतना अवश्य किया गया कि पंडित जी और गौड़बोले ने मिलकर कुछ नोट तैयार किए। उनसे जितना मतलब निकल सका उतना प्रियंवदा ने निकाल कर संतोष कर लिया। इस तरह सब कामों की व्यवस्था हो गई और उसके अनुसार कार्य होकर जो परिणाम हुआ वह पाठकों ने गत प्रकरणों में पढ़ ही लिया। हाँ पंडित जी को भी

हिंदी में इस प्रकार की विद्यां के उपयोगी पुस्तकें न मिलने से बहुत खेद हुआ और उन्हेंने मराठा, गुजराती से भाषांतरित करके हिंदी में इस अभाव की पूर्ति करने का संकल्प भी कर लिया।

पंडित जी को यहाँ रहने के दिनों में जो दूसरा काम करना था उसका संवंध गोरक्षा से था। उन्हेंने इस विषय में चैवालोसवे' प्रकरण में जो राय देकर छोटे भैया के लिये संकेत किया था उसका हूबहू फोटो उनके सामने खड़ा हो गया। इनके यहाँ गोमेवा दो भागों में बैठो हुई थी। एक घर में और दूसरी बर्गीचे में। घर में गृहस्थी के उपयोगी जो गौवे रहती थीं उनका संवा का भार पहले सुखदा ने ही उठा रखा था और अब दोनों मिल गई। उनका दूध, दहो, मटा और मक्खन ठाकुर जी के नेबेद्य में काम आता है। उसमें से क्वाँछ मुहल्लेबालों को भी बाँटो जाती है। गोबर और गोमूत्र घर को पवित्र करता है। जब उनके यहाँ नित्य ही वैश्वदेवादि यज्ञ होते हैं, और उनके लिये हर बात में गोमाता की आवश्यकता है तब इस बात का तो कहना ही क्या ? किन्तु नित्य प्रातःकाल उठकर दोनों बहुएँ लिलाट पर रेली का तिलक लगाए, सौभाग्य चिह्न धारण किए, दोनों मिलकर गंधाज्ञत से गोमाता का पूजन करती हैं। रात में उठ उठकर वे इस बात की खबरदारी रखती हैं कि उनके बैठने की जगह गीली न रहने पावे। वे अपने हाथों से उनके सामने चारा डालती हैं और सानी करके उन्हें खिलाती हैं।

दूध है तो सानी और न दे तो सानी । बारहों महीना सानी मिलती है । वे गौएँ साफ सुथरी नहाई, धोई, झृतु के अनुसार समय पर छाया में और समय पर खुले में रक्खी जाती हैं । बछड़े बछिया हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ मानों हाथी के से बच्चे हैं । यदि वे बाजार में भाग जायें तो रस्ता बंद कर दें । आधे से अधिक दूध उनका और शेष वर खर्च के लिये हाता है ।

अपने घर की गौओं की ऐसी सेवा देखकर, उनकी हृष्टता पुष्टता देखकर और उनके दर्शन करके पंडित जी की कली कली खिल उठा । उन्होंने गोमाता को प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और जब वगीचे बीं गौओं के जाकर दर्शन किए तब वे आनन्द में मग्न हो गए : वहाँ मारवाड़ी नसल की कोई पचास गाएँ होंगी । उनके साथ दस पंक्तरह लुर्ली, लंगड़ी, बूढ़ी, ठाठ भी थीं किन्तु सबकी सब मार्दी ताजी, शरीर पर मैल का नाम नहीं । दिग रात में न्यार जितनी उनसे खाई जाय खायें । उनका मन ही बैरी है । बाटा सबको दिया जाता है । फूस के ही सहो, कच्चे घर ही क्यों न हों परन्तु उनके रहने के लिये मकान तीनों झृतुओं के योग्य हैं । एक और घास का गंज लगा हुआ है, कराई के ढेर पड़े हैं तो दूसरी ओर खली और बिनोले से कोठे पर कोठे भट रहे हैं । उनको चराने के घास पर अलग, उन्हें निलहाने, धुलाने और उनके बाँधने की जगह को साफ सुथरी रखने पर अलग नौकर हैं । गौएँ और बछड़े दो चार

( १७१ )

बंटे के लिये चरने भी जाति हैं किन्तु गोशाला में उनके लिये कमी नहीं है। उनका धी बेचा जाता है, दूध बेचा जाता है किंतु और से अच्छा होने पर भी बाजार भाव से महँगा नहीं दिया जाता। उनकी दवा दारू के लिये एक बक्स में ओषधियाँ भरी हुई हैं। जहाँ जरा सी एक गाय कुछ अनमनी दिखलाई दी उसके इलाज के लिये हलचल मच जाती है, और इस तरह स्वर्ग की छेवी भगवती कामधनु इस संसार में आकर भी स्वर्ग-सुख प्राप्त कर रहा है। पंडित जी ने इस प्रवेष्ट को देखकर बहुत प्रशंसा करने के अनंतर एक चुटि बतलाई—“सांड़ अच्छा नहीं है। जब तक नर अच्छा नहीं मिने संतान अच्छी नहीं हो सकती। मैंने तुम्हारे लिये एक अच्छे नर का प्रवेष्ट भी कर दिया है। इस यात्रा में एक जगह एक आँकल कसाइयों को रुपया देकर छुड़ाया है। वह दो चार दिन में अनेकाला है। लां यह लो।” कहकर उन्होंने कांतानाथ को बिलटी दी और तब बोले—

“भैया तुमने यह काम छेड़ा है और इसमें सफलता भी होगी। न हो तो न सही। हमारा कर्तव्य है।”

“भाई साहब, इससे बढ़कर सफलता क्या होगी कि बस्तो भर में आजकल गोसेवा की धूम है। यहाँ गाएँ तो सब गुहरथी रखते ही हैं। जिनके यहाँ नहीं थों वे भी मँगवा रहे हैं। आप पास के गाँवों में चार पाँच जगह ऐसी गोशालाएँ खुल गई हैं। लोग मुझसे आ आकर पूछ जाते हैं

और हमारा विवक्तुल अनुकरण करते हैं। भगवान् के अनु-  
अह से होड़ाहोड़ी का अवसर आ गया है ॥”

“परंतु एक बात याद रखने की है। यदि इसमें  
बेपर्वाही करेगे तो पुण्य करते हुए पाप होगा। नरक के  
आगी होना पड़ेगा ।”

“हाँ ! मैं समझ गया। मैंने निश्चय कर लिया है कि  
इस गांशाला के बछड़े या बछड़े होने पर बैल ऐसे दुष्टों के हाथ  
न बेचे जायें जो उनका अच्छा तरह पालन न करें, उनसे  
अधिक मेहनत लेकर पेट भर खाने को न दें, अथवा कसाई  
के हाथ अपने चौपायां को बेच दें। जिस पर मुझे जरा सा  
भी संदेह होता है उसे चाहे जितना नफा मिले मैं कहापि  
नहाँ देता हूँ। मैं लेनेवालों से प्रतिज्ञापत्र लिखवाकर हो  
सकता है तो जमानत भी ले लेता हूँ ।”

“परंतु और लोग बेचें तो ?”

“इसका भी मैं प्रबंध कर रहा हूँ। कोई सभा करके  
नहीं, किसी से लड़ भगड़कर नहीं, मिज्ज घर्मियाँ को चिढ़ा-  
कर सताकर नहीं किन्तु जो लोग यहाँ आते हैं वे सब यहाँ  
की स्थिति देखकर ललचाते हैं और स्वयं अपनी इच्छा से  
प्रतिज्ञापत्र लिख जाते हैं, यहाँ तक कि कितने हीं सुसलमान  
भाई भी इसको पसंद करने लगे हैं। वे स्वयं प्रतिज्ञाएँ करते  
हैं, हमारी नकल करते हैं और इस तरह बर्ताव करने को तैयार  
हैं क्योंकि उन्होंने समझ लिया है कि अगर मुल्क से गाएँ नेस्त

( १७३ )

नाबूद हो जायेगी तो दूध धी कहाँ से मिलेगा, खेती कहाँ से करेंगे और गल्ला कहाँ से पावेंगे ? बलिक अब वे यहाँ तक मानने लगे हैं कि हिंदुस्तान में मँहगी और कहत इसी वास्ते पढ़ता है । ”

“बड़े हर्ष की बात है । भगवान् तुम्हें सुयश दे । हाँ तो गोचारण की भूमि के लिये तो यहाँ कुछ कष्ट है दो नहीं ? ”

“नहीं बिलकुल नहीं । बलिक राज्य इस काम के लिये बंजर के साथ अच्छो जमीन तक देने को तैयार है । जिस जमीन पर केवल गौओं की नार के लिये ज्वार की सूख का जाती है उस जमीन का लगान आधा लिया जाता है । अपने खर्च के लिये बंच दी जाय तो पूरा । ”

“यह और भी तुमने अच्छी खबर सुनाई । बस परमेश्वर ने चाहा तो हमारे यहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टाड़ो, चोरभय और राज्यभय, यों छहों ईतियों की शिकायत न होगी । भले ही कोई करके देख ले । ”

“बेशक !” कहकर गौओं की पीठ पर हाथ फंरकर, उन्हें पुचकारकर अपनी ओर से ढो दो संर के लड्डू उन सबको खिलाने के अनंतर उन्हें प्रणाम कर करके मन ही मन मग्न होते हुए दोनों भाई अपने घर गए । तीसरी बात के विषय में परामर्श करने का उस दिन इन्हें अवसर ही न मिला । दोनों भाई घर जाकर सायंकाल के नित्यकृत्य में लग गए, दंव-दर्शन में लग गए और भोजन करके आराम करने लगे क्योंकि गोशाला से लौटती बार रात्रि अधिक हो गई थी । अस्तु !

## प्रकारण—६३

### नौकरी का इस्तीफा

जिस ख्याल से पंडित जी ने भाई की नौकरी छुड़वाई वही उनके लिये था। कदाचित् उससे भी बढ़ कर। उनके संध्यावंदन अग्निहोत्र बलिवैश्वदेवादि नित्य कर्मों में जब जब विनापड़ता तब ही तब वह इस्तीफा देने का तयार होते। उन्होंने ही तीन बार दिया भी परंतु उनकी कार्यकुशलता, उनकी भलमनसाहत, उनकी सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी देखकर ऊपर के अफसरों ने मंजूर नहीं किया। वह पहले ही धर्मनिष्ठ थे और चात्रा ने और भी उनको हड़ कर दिया इसलिये उनकी इच्छा नहीं थी कि फिर जाकर नौकरी की चक्की में पिसे। परंतु छुट्टो से वापिस जाकर एक बार अपने पद का चार्ज लेना अनिवार्य था इसलिये उन्हें जाना पड़ा और यह गए भी परंतु इस बार इस्तीफा देकर अपना पिंड छुड़ाने के लिये गए।

वह किसी जमांदारी में कोर्ट आफू वार्ड्स के मैनेजर थे। वहाँ का राजा अभी निरा बालक था। इधर उनमें ऊपर लिखे हुए गुण लबालब भरे हुए थे इसलिये अफसर उनसे प्रसन्न रहते थे और उनके आगे जब किसी की दाल नहीं गलते पाती थी तब अमला उनसे नाराज ! इस कारण लोगों ने उन पर

( १७५ )

मिथ्या मिथ्या अभिशाप लगाने में भी कसर नहीं रखती । बुरे बुरे और गंदे गंदे इलजाम लगा लगाकर कभी “बंदे खुदा” के नाम से और कभी खुलाखुली शिकायतें करवाईं परंतु जो अपने सिद्धांतों पर अटल है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता । हर एक शिकायत में, हर एक तहकीकात में वह सौ टंच का सोना निकले । सोना ज्यों ज्यों तपाया जाता है त्यों ही त्यों निखर निखरकर उसका रंग, उसका मूल्य बढ़ता जाता है । बस इसी तरह उनका आदर बढ़ा और जो लोग उनका सर्वनाश करने के लिये उधार खाए फिरते थे वे ही उनके आगे लजित होने लगे, उनका अनुकरण करने लगे और उनके मित्र बन बनकर उनकी प्रशंसा का ढोल पीटने लगे ।

जो कुछ बेतन उनका नियत था, बस उसी में उनको संतोष था । किसी के यहाँ से कोई छोटी माटी वस्तु यदि भेट सौगात में आई अथवा बहुत दबाव पड़ने से किसी के यहाँ उन्हें दावत में ही संयुक्त होना पड़ा तो यह रिश्वत नहीं है । यह हाकिमों का सत्कार माना जाता है । इससे दाता का मान बढ़ता है किंतु नहीं ! उन्हें इन बातों तक की सौगंद थी । माई के लाल कितने ही ऐसे भी निकल सकते हैं जो इन बातों की सौगंद रखने पर भी हजारों के गटे निगलने में नहीं चूकते । हर एक आदमी के सामने पैसे पैसे के लिये हाथ पसारने से एक ही से इकट्ठा लेना भी अच्छा समझा जाता है । जमाने को देखते हुए वह भी बुरा नहीं समझा

( १७६ )

जा सकता ! जो किसी को सताकर न लेवे और जो मिल जाय उस पर संताप कर जाए, यह एक प्रकार की दूध मिच्छा कही जाती है किंतु पंडित जी को इन कामों की शपथ हो ठहरी तब जैसी एक पाई बैसे ही दस हजार । एक दिन रात्रि जो समय इनको अफेला पाकर एक आदमी आया । उसने आकर कान उठाय, इधर उधर ताककर, आँखें से आँखें मिलाए गिना, दुख मिलककर, उरते डरते इनके सामने जश-पुरी आशकियों का ढंग कर दिया । देखते ही इनकी आँखें खुलीं । इन्हें एक बार सिर से पैर तक उस आदमी पर नजर डाली, फिर उस ढंग को घूरकर अच्छो तरह देखा और तब यह उस आनेवाले से कहने लगा, किसी तरह के राग द्वेष से नहीं किंतु योंहाँ, स्वभाव से इन्हेंने कहा—

“ क्यों भाई ! आज यह क्या ? ”

“ साहब, यह आपके बास्ते मेरी तरफ से एक अदना सी नजर है ! मामला आपको मालूम ही है । बस यह जान आपके हाथ में है चाहे जिलाओ, चाहे गर्दन ही क्यों न उड़ा डालो । ”

“ हाँ ! मामला मुझे मालूम है और तुम भरोसा रखो कभी तुम्हारे साथ अन्याय न होगा । परंतु इनकी कोई आवश्यकता नहीं । इन्हें ले जाओ और फिर कभी मेरे सामने ऐसी बात का नाम तक न लेना । ”

“ हाँ ! मैं जानता हूँ कि आपको इन बातों की कसम है लेकिन दस हजार है । एकदम इतनी रकम देनेवाला कोई नहीं मिलेगा और इस पर मेरी जिम्मेवारी है कि फरिश्तों को भी इस बात की खबर न हो । आप सुझे जानते ही हैं । मैं खिर कटने तक अपनी जवान का पावंद हूँ । वस भरोसा रखिए और मंजूर कीजिए । ”

“ बेशक आपका कहना ठोक हो सकता है परंतु जैसे इतनी रकम का देनेवाला कोई नहीं मिलेगा वैसे ही दस हजार रुपए पर पेशाव करनेवाला भी आपको नहीं मिलेगा । अभी इनको लेकर तशरीफ ले जाइए और आयदा इन कासों के लिये सुझे मुँह न दिखलाइए । ” वस पंडित जी के मुँह से ऐसे दृढ़ किंतु कठोर वाक्य निकलते ही वह झटपट अशर्कियों को दुपट्टे में बाँधकर गालियाँ ढेता हुआ लजाकर वहाँ से चल दिया । उनकी ईमानदारी के कांडियों नमूनों में से एक यहाँ लिख दिया गया । हुंडे के एक चावल को मसकने से सबकी जब परख हो जाती है तब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं ।

यों पंडित जी केवल निर्लोभ हों सो ही नहीं । कितने ही पराएं वैसे से घुणा करनेवाले लॉगोट के कच्चे निकल आते हैं । परंतु जैसे प्रियंवदा का दृढ़ पातिक्रत उद्धाहरणीय था वैसे ही यह भी “पर तिय मात समान ” की प्रतिमूर्ति थे । इस नौकरी में इनको केवल रुपया दिखाकर लालचानेवाले मिले हों तो खैर परंतु अच्छो रुपवती युवतियों से एकांत में

मिलने का भी इनके लिये अवसर आया । परंतु मजाल क्या जो यह उनकी ओर आँखें उठाकर तो देख लें । इन्हें निरामाता या भगिनी का संवेदन करके उनको भेंपाया, उनसे गालियाँ खाईं और इतने पर भी वे वहाँ से न छिंगीं तो या तो स्वयं ही वहाँ से सटक गए अथवा किसी नौकर चाकर को बुलाकर अपने सिर की बक्का टाल दी । अवश्य ये ऐसी युवतिया होंगी जो लगभग या पूरी बिगड़ चुकी हों क्योंकि ड्युमिचारिणी छी भी कभी अपनी ओर से प्रस्ताव नहीं कर सकती है । इसलिए प्यारे पाठक यदि इन्हें “ विपत्ति की कसौटी ” की मुलिया भान लें तो उनका दोष नहीं किंतु नहीं जब इनको रूप ही भगवान् ने ऐसा दिया था जिससे स्वभाव ही से एक युवती का इनकी ओर मन आकर्षित हो, इन्हें देखते ही उनके हाथ पैर ढीले पड़ जायें, इनकी मूरत ही कामदेव को जगा देने के लिये मोहनी मंत्र हो तब केवल इतने ही पर इस बात की इतिश्री न कर देनी चाहिए । इसके नमूने के लिये दो चार उदाहरण लिखे जा सकते हैं । परंतु इस काम के लिये कम से कम दो चार प्रकरण चाहिएँ और यह पोथी बढ़ते बढ़ते पहले हो पोथा बन चुकी है इसलिये उन बातों की कल्पना करने का भार पाठकों पर है ।

पंडित जी में जैसे इस प्रकार के अनंक गुण थे वैसे ही साम्राज्य के, राज्य के, मालिक के और प्रजा के सुभवितक भी वह एक हो थे । “ नमक का हक अदा करना ” उनका दृढ़

( १७८ )

सिद्धांत था । इसके लिये अपने प्राण तक न्योछावर कर देना वह बड़ी बात नहीं समझते थे । ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में परमेश्वर के अनुग्रह से यदि ऐसा अवसर ही न आई तो इसको वह क्या करे? किन्तु वह तन से, मन से और धन से कभी दूसरे का अधिय, अहित नहीं करते थे और जहाँ तक बन सकता था नहीं होने देते थे । इससे पाठक समझ सकते हैं कि जो काम उनके सिपुर्द किया गया उसका उन्होंने कैसा प्रबन्ध किया होगा ! प्रायः अमलेवाले इस बात की शिकायत किया करते थे कि वह सजा कड़ों देते हैं किन्तु वह अपराधी को योग्य दंड देकर बदमाशों को ठिकाने ले आए थे इसलिये प्रजा उनकी वाहवाही करती थी । चमाशोलता का भी वह एक नमूना थे । किसी ने कोय में आकर उन्हें गाली दी, कोई उन पर आक्रमण करने को तैयार हो गया अथवा किसी ने पत्थर उठाकर मार ही दिया । इस पर उनका अदली का सिपाही उसकी गति बनाने को तयार हुआ परंतु लाल लाल आँखें निकालकर “नहीं ! हरगिज नहीं ! खबदार हाथ उठाया तो !” कहकर उन्होंने उसे रोका और “भोला है ! समझ नहीं है ! बोल बोल तुझे कष्ट क्या है ?” कहते हुए उस मारनेवाले को उलटा लजित कर दिया ।

ऐसी दशा में यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस समय उन्होंने इस्तीफा दिया सब ही को कितना कष्ट हुआ होगा । हाँ उनका इस्तीफा बड़ी कठिनता से स्वीकार हुआ ।

( १८० )

और यों इतने बड़े काम को, इतने बड़े अधिकार को, इतने बड़े वैभव को नियन्त्रण की भाँति तोड़कर वह अपने घर आ बैठे। जहाँ उन्होंने नौकरी की बहाँ अब भी उनका आदर है, अब भी छोटे बड़े सब लोग इन्हें चाहते हैं। अच्छी नौकरी करने का, शुभचिंतकता करने का यह एक छोटा सा आदर्श है। पाठक पाठिकाओं के अंतःकरण पर अच्छा प्रभाव डालने के लिये यदि उनकी इच्छा हो तो इस खाके के सहारे, यथेन्द्र लौट फेर करके वे अच्छी तस्वीर तय्यार कर सकते हैं। यहाँ इतना अवश्य लिख देना चाहिए कि जब तक पंडित प्रियानाथ डाक विभाग में रहे तब तक भी उनका इन बातों में, अपना काम अच्छी तरह अंजाम देने में, सुधार रहा और इधर आ जाने बाद भी वर्द्धमान धीर्जि ।

---

## प्रकारण—६४

### व्यापार में सत्यनिष्ठा

पंडित जी जब नौकरी पर जाने लगे तब छोटे भैया से कह गए थे कि “देशी माल की एक डाइरेक्टरी तैयार कर लेना । जहाँ तक बन सके यह काम जल्दी हो जाना चाहिए ताकि जो उद्योग करना विचारा है उसका आरंभ मेरे वापिस आते ही कर दिया जाय । डाइरेक्टरी को तीन हिस्सों में विभाजित करना । एक में कलों से तैयार होनेवाले समस्त पदार्थों का समावेश किया जाय, दूसरे में सब प्रकार की देशी कारीगरी जो हाथ से तैयार की जाती है और तीसरे में उन पदार्थों की नामावली दर्ज होनी चाहिए जो किसी दिन बड़े नामी थे किन्तु समय ने, उहायता के अभाव ने अथवा मिल उद्योगों ने तथा विलायती माल ने उनका बनना घन्द कर दिया है । हाँ इस बात का अवश्य ख्याल रखना होगा कि वह माल उत्तेजना देने से अब भी तैयार हो सकता है या नहीं ! जहाँ तक बन सके नमूनों का भी संग्रह कर लेना ।” कहने में यह बात जितनी सीधी दिखलाई देती है करना उतना ही कठिन मालूम पड़ा । युरोपियन सज्जनों की बनाई हुई डाइरेक्टरियों से पहला हिस्सा तैयार करने में विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा । दूसरे और तीसरे भाग के लिये मराठी

भाषा के “व्यापारी भूगोल” से और मिस्टर मुकरजी की अँगरेजी किताब से तथा “भारत की कारीगरी” से मदह अवश्य ऐसा परंतु ये सब की सब कुछ कुछ पुरानी पड़ गई और इस पुस्तक में आज दिन तक की उन्नति का समावेश होना चाहिए । यदि सभाचारपत्रों के विज्ञापनों का सहारा लिया जाय तो प्रथम तो उनमें ताकत की दबा और काम-संजीवन, सोजाक तथा उपदंश की रामबाण दबाओं की भरमार, देशी कारीगरी के नोटिस ही विद्युत फिर कितने ही लोगों की नस नस में बैरेमानी यहाँ तक भरी हुई है कि विलायती माल को देशी बतलाकर बेचते हैं, उसका ट्रैक मार्क बदल देते हैं, विलायत से ही देशी नाम का ट्रैकमार्क लगवाकर तथा बन्द माल में बाल लेते हैं और देशी और विलायती को मिलाकर देशी के नाम से बेचते हैं । यदि विलायती बारीक सूत से देशी धोती जोड़े बनाकर उन्हें देशी के नाम से बेचा जाय तब भी गन्नीमत है । उनमें कुछ तो देशीपन है परंतु इस तरह की धोखेबाजी देखकर कांतानाथ एक बार घबड़ा उठे । उन्होंने इस काम के लिये सभाचारपत्रों में नोटिस भी दिए किन्तु व्याख्यालबाजी से परोपदेश करने के आगे किसी को अवकाश ही कहाँ ? तब इन्होंने कुछ खुशामद करके, कुछ दे दिलाकर और कुछ लोकोपकार समझाकर कितने ही आदमी ऐसे खड़े किए जिन्होंने इस काम में सहायता करके उसे संग्रह किया । यों जिस समय पंडित जी इस्तीफा देकर अपने घर

( १८३ )

आए, उन्हें बहुत ही उत्तम तो नहीं परंतु जैसी तैसी डाइरेक्ट्री तैयार मिल गई। पंडित जी इसके साथ नमूनों का संग्रह देख-कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कांतानाथ को शावाशी देकर यहाँ तक कह दिया कि—

“करनवाला तो परमात्मा है परंतु आशा है कि सफलता होगी। इसके लिये सबसे बड़ा काम यहो था जो तुमने कर लिया।”

“सब आपके अनुग्रह से, आपके प्रताप से और आपके उपदेश से। काम कर्यांकर करना, सो पहले ही मैं आपको लिख चुका और अब भी संचेप से सुना दूँगा। अभी तक इस काम के लिये तीन सौ तीनसे तेरह आने तीन पाई खर्च हुआ है। और काम छेड़ते ही रूपए की आवश्यकता पड़ेंगी। इसके लिये अभी दस हजार रुपए चाहिएँ। यह रकम कम से कम है। ज्यों ज्यों काम बढ़ेगा त्यों त्यों रूपए की आवश्यकता बढ़ेगी किंतु मैं घर में से एक पाई भी नहीं दे सकता। जितना रूपया था वह अभी इधर उधर व्यापार धंधे में, जर्मी-दारी में लगा हुआ है। उधर से रूपया खेंचना अध्युव के भरोसे धुध आय को, निश्चित आमदनी को बिगाड़ देना है। परमेश्वर करे इस उद्योग में सफलता हो और आपके प्रताप से लाभ ही होगा परंतु.....”

“हाँ ! परंतु कहकर रुक क्यों गए ? यही कहागे ना कि रूपया चाहिए। बेशक ! सबसे पहले आवश्यकता रूपए

की है। आजकल दुनिया में रूपया ही सब से बड़ो चीज समझी जाती है। लोग कहते हैं कि “रूपया खुदा का बच्चा है” परंतु अब तो स्वार्थी जीवों ने उसे खुदा का बाप तक मान लिया है। और ! इसके लिये पाँच पाँच रुपए के शंगरों से कंपनी खड़ी कर सकते हैं। युरोपियालों को इस उद्योग से ही बड़ा लाभ हुआ है परंतु भारत की कंपनियाँ पनपती नहीं। ईश्वर की कृपा से अब इस प्रकार का उद्योग उद्धति पर है। इस उद्योग से “पाँच” जने भी लाकड़ी और एक जने का बोझ! किसी पर विशेष बोझा नहीं पड़ता और अनायास रूपया इकट्ठा हो जाता है परंतु प्रथम तो मिलकर काम करने की भारत-वासियों में आहत नहीं। दूसरे हम लोगों में सत्यनिष्ठा की मात्रा बहुत घट गई है। बैरेंपानी आगे और सचाई पीछे। तीसरे अभी तक हम लोग इस उद्योग में युरोपियनों के समान दृक्ष नहीं हुए हैं। इस कारण अपने अनजानपन से ऐसी ऐसी भूलें कर दैठते हैं जिनके कारण चढ़ने के बदले गिरते हैं, नफे की जगह टोटा उठाते हैं। और चौथे यह कि परदेशी व्यापारियों के जोर से उनके स्वार्थ में विनान पड़ने पावे इसलिये हमारे यहाँ के कायदे कानून भी हमें ऐसे उद्योगों की उत्तेजना केन के स्थान में अधिक अधिक जकड़ते हैं। कंपनियों के ठीक ठीक न पनपते के, जन्म लेकर नाश हो जाने के, दिवाले पड़ जाने के ऐसे ही अनेक कारण हैं। इसलिये इस कार्य के लिये कंपनी खड़ी करना मैं अभी उचित नहीं समझता।”

“ तब ? ”

“ वास्तव में तुम्हारे “ तब ” का जवाब बड़ा मुश्किल है । भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है कि “ साँझे की तो होला अच्छी जिसे जला दिया जाय । ” हम लोगों की आदत ही नहीं है कि साँझे में काम करके उसे पार उतार ले जायें । भारतवर्ष उद्योगशील औरंगजेंजों की छत्रछाया में आकर जिन कारणों से अब तक दरिद्री बना हुआ है उनमें एक यह भी है कि हम लोग मिलकर काम करना नहीं जानते । परमंश्वर के अनुप्रह से अब सीखने लगे हैं और सफलता भी प्राप्त करते जाते हैं परंतु यहाँ जो कार्य एक व्यक्ति की बुद्धि से, बल से, विद्या और पुरुषार्थ से हो सकता है वह अनेक से नहीं । यदि एक अगुवा बनकर समुदाय को अपनी ओर झुकाना चाहे तो सहज में झुका सकता है । “ दुनिया झुकती है झुकानेवाला चाहिए । ” किंतु जहाँ इस आदमी मिलकर काम करते हैं वहाँ आपस में खेंचातानी होती है, युक्ता फजीहत होती है । ”

“ हाँ ! आपका कथन यथार्थ है परंतु तब ? ”

“ घबड़ाओ भत ! मैंने पहले ही से सोच लिया है ! यदि पहले से इसका निश्चय न कर लेता तो अभी इस काम में हाथ न ढालता । इतना परिश्रम और इतना खर्च ही क्यों करवाता ? ”

“ हाँ सो तो मुझे भी निश्चय है । परंतु ? ”

“ अभी दस हजार के बदले पाँच ही हजार से कार्य आरंभ कर दो । पिता जी के प्रताप से परमेश्वर की कृपा से धूंध पर तुमको रूपया मिल जायगा । कंपनी के नाम का, विज्ञापनवाजी का, और ऐसे ही और तरह का आडंबर बिल-कुल मत करना । आडंबर लोगों को ठगनेवाले करते हैं । भूठे व्यवहारवाले को अपनी सचाई जलाने के लिये ऐसे पैसे ढोंग करने पड़ते हैं । आरंभ में चाहे नफा कम मिलें, चाहे प्रसिद्धि देर से हो और काम धीरा ही क्यों न हो परंतु व्यापार में सत्यनिष्ठा सब से बड़ी सहायक है । यदि तुम थोड़ा नफा लेकर, एक ही भाव पर, घटाए बढ़ाए बिना नियत मूल्य पर नकद दामों से माल बेचोगे, यदि लोगों को विदित हो जायगा अथवा यों कहा कि तुम ब्राह्मकां के मन पर यह जमा लेकोगे कि तुम्हारे यहाँ भूठ का नाम तक नहीं है, यदि एक बच्चा तुम्हारे यहाँ लेने आवे तब भी वही भाव और बड़ा आवे तब भी वही, तो लोग दौड़ दौड़कर तुम्हारे यहाँ आवेंगे । हर एक चीज पर उसकी खरीद की मिती और असली कीमत खर्चें सभेत लिखकर चिट चिपका दो । खरीदार स्वयं उसके अनुसार दाम देकर ले जायगा । भाव ठहराने का बिलकुल काम ही नहीं ! जब तुम उधार किसी को दोगे ही नहीं तब रूपया छूबने का काम क्या ? माल वही मँगवाना जिसकी चिकी हो । जब औरें की तरह तुम अनाप सनाप नफा न लोगे तब तुम्हारा माल अवश्य सस्ता पड़ेगा ।

( १८७ )

देशी माल टिकाऊपन के लिये प्रसिद्ध है। एक बार चाहे खर्च कुछ अधिक पड़े परंतु फिर फटने का, दूट जाने का और विगड़ जाने का नाम तक नहीं जानता ! ये बातें तुम जब लोगों के चित्त पर ठसा देगे तब तुम्हारी दूकान से माल खरीदते हुए और जगह कहीं भी ग्राहक न जायेंगे ।”

“और दूकान का नाम ?”

“दूकान का नाम ‘राधानाथ रमानाथ ।’ वही दाढ़ा जी और बापू जी का नाम । सब प्रताप उन्हीं का है ।”

“उत्तम है । परंतु क्यों जी भाई साहब ! जब माल पर खर्चे समेत असली कीमत लिख दी जायगी तब व्याज ?”

“दो गहीने का व्याज तो खर्चे में शामिल कर देना और कोई चीज़ सिवाय दिनों तक पड़ी रह जाय तो उसके लिये हो चिट पर मिती लिखना है ।”

“अच्छा ! और माल विका ही नहीं तो उसका टोटा कहाँ से निकलेगा ?”

“विके हुए माल के नफ से । और न भी निकले तो भुगतना । तुम्हारी दूकान की मखमल का घाटा गजी खरीदने वाला क्यों भुगते ?”

“बेशक ! ठीक है । अब रूपए का ही सवाल बाकी है ।”  
“पाँच हजार रुपया तुम्हारी भाभी का बैंक में जमा है । उसे उसके नाना के यहाँ से मिला था । व्याज मिलाकर कोई सात आठ हजार हो गया है । आज कल वैंकों के

दिवाली भी बहुत निकलते हैं। देशी व्यापार और देशी कारी-गरी जो उभासि के लिये ही वैकों में जमा करना है और वही काम तुम करता चाहते हो। जस इसलिये तुमको रुपया उनार नहीं लेना पड़ेगा। जस भाभी सेठ और देवर गुमाएता ! उससे पूछ लेना ।”

“है ! क्या मैं सेठ ? ( दानों के घोच से बात काटकर ) क्या वह रुपया अभी तक वैक में ही जमा है ? मैं तो भूल ही गई थी। पर मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता आ पड़ी ? मेरा डसमे कुछ वास्ता नहीं। मैं कुछ नहीं जानती। आपके मन में आवे सो करो। मेरा वास्ता तो आपके चरणारविंदी से है। मुझे हृपयों से क्या मतलब ?” प्रियंवदा के मुख से इतने वाक्य निकलने पर पंछित जी “बैशक ऐसा ही है और हाना भी चाहिए किंतु वह खो-घन है, तेरे नाना का दिया हुआ है इसलिये तेरी राय ले लेना आवश्यक था और जब तू घर में ( कुछ मुसकुराकर ) बड़ी बूढ़ी है तब घर के कामों में भी तुम्हसे सलाह ली जाय तो अच्छा हो है।” कहकर चुप हो गए और “ हाँ ! हाँ ! ! भाभी सेठ और मैं गुमाएता ! इस धंधे की सब बातें तुमसे पूछ पूछकर करल्णगा ।” कहते हुए कांतानाथ ने भाई साहब की बात का अनुमोदन किया। “बैशक मेरी भी राय है।” कहते कहते प्रियंवदा का मुँह दानों बालकों ने आकर पकड़ लिया। “अम्मा दूध ! अम्मा चीनी ! अम्मा मिठाई !” की रट लगाकर अम्मा को वहाँ से

( १८८ )

दोनों बालक पकड़ ले गए । न उन्होंने अम्मा को एक शब्द बोलने दिया और न किसी की कान पड़ी बात सुनने दी । पंडित जी ने उन्हें अपने पास बहुतेरा बुलाया किंतु अम्मा की गोदी छोड़कर उनके पास एक भी न आया । और लाचार होकर प्रियंवदा को वहाँ से उठ जाना पड़ा । वह गई और अपनी रेशमी नई निकोर साड़ी पर धूल में सने हुए दोनों बच्चों को दहनी और वाईं गोदी में चढ़ाए हुए ले गई । इस प्रकार की लीला समाप्त होने पर प्रियानाथ ने कांतानाथ से कहा—

“बस रुपयों का तै हो गया ! अब कर्तव्य यह है कि गैंडबॉले महाशय से शुभ मुहूर्त पृष्ठकर कार्य का आरंभ कर दो । “शुभस्य शीघ्रम् ।” जब मसाला तैयार है तब जितनी ही जट्ठी की जाय अच्छा है ।”

“बेशक ! परंतु एक बार व्यवस्था पर फिर गौर कर लेना चाहिए । मेरा विचार इस कार्य को तीन हिस्सों में बाँट देने का है । भारतवर्ष की मिलों का बना हुआ कपड़ा अथवा और और सामान बिक्री का ढंग देखकर कमीशन सेल पर अथवा अधिक बिक्री होती हो तो खरीदकर मँगवाया जाय । पहला हिस्सा तो यही समझना चाहिए । दूसरे हिस्से में दस्ती कारीगरी है । हाथ के बने कपड़े, बरतन आदि के जितने नमूने इकट्ठे हुए हैं उनमें से जो अवश्य ही बिक जाने योग्य हैं उनको तो छोड़ा योड़ा मँगवा ही लेना और बाकी बचे हुओं को काँच की अलमारियों में प्रदर्शनी के लिये दूकान में

सजाकर रखना । उन्हें लोगों को दिखाकर खरीदने की उत्तेजना हैना । तीसरा काम इन दोनों से भारी है । उसमें खर्च और मेहनत दोनों की आवश्यकता है । परंतु साथ ही वह काम भी बहुत जरूरी है ।”

“ हाँ ! मैं समझ गया । वास्तव में बहुत आवश्यक है । काम को छोटे किंतु दृढ़ पाए पर आरंभ करना चाहिए । पहले, सबसे पूर्व मालपुरे और टौक के नमदे हो लो । वहाँ नमदे और घूगियाँ अब भी बहुत नफोस बनती हैं । बनाने-बाले अपढ़ बेशक हैं परंतु हैं कारीगर । उन्हें थोड़ा बहुत सिखाने से वे नमदे तो नमदे किंतु फेल टोपियाँ भी अच्छी बना सकते हैं ।”

“वास्तव में यहा मेरा संकल्प था और मैंने इसके लिये साँचे भी बनवा लिए हैं और रंग भी उन पर पका जमने लगा है ।”

“शाबाश ( साँचे और रंग का नमूना देखकर ) बहुत अच्छा हुआ ।”

“इसी तरह बीकानेर की लोई, कोटे के डोरिये, बूँदी का रंग और ऐसा कोई रजवाढ़ा नहीं जो किसी न किसी तरह की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध न हो । जयपुर तो कारीगरी के लिये केंद्र ही ठहरा ।”

इस तरह की सलाह करके जो ठहराव हुआ उसके अनुसार कार्तिक सुही से अजमेर में वहाँ “ राधानाथ रमानाथ ”

( १८१ )

के नाम पर शास्त्र-विधि से गणेश-पूजन करके दूकान खोल दी  
गई और जब कांतानाथ जैसे व्यवसायी का प्रबंध था, जब  
पंडित जी जैसे अनुभवी का निरीक्षण था और जब सत्यनिष्ठा  
हो इनका मूल मंत्र था तब सफलता होने में आश्चर्य क्या ?  
पंडित जी के मनोराज्य में सफलता अवश्य हुई और सो भी  
ऐसी कि जिसकी नकल जगह जगह होने लगी। नकल होने  
से ये लोग नाराज नहीं हुए। पंडित जी ने स्पष्ट ही कह  
दिया कि—‘हमारे अनुभव से यदि लोग लाभ उठावें तो  
हमारा सौभाग्य ! ऐसे कामों की नकल होने हो में देश का  
कल्याण है। हमने इसी लिये नमूना खड़ा किया था ।’

यदि पाठक चाहें तो इसका अनुकरण करके लाभ  
उठाने का उन्हें अधिकार है। उन्हें अवश्य ऐसी दूकानें  
खोलनी चाहिए ।

---

## प्रकरण—३५

### प्रेत का गोप्ता

“क्या जी ! तब आपका वहम अभी तक नहीं निकला ? जब जिक्र आता है तब हो “आबू के साधु” का नाम लेकर आप ताना दिया करते हैं। क्या सचमुच ही आपको संदेह है ? अथवा विनोद के लिये ?”

“वहम और विनोद, परस्पर शत्रु हैं। जहाँ वहम वहाँ विनोद नहीं और जहाँ विनोद वहाँ वहम का काम क्या ? परंतु यहाँ वहम भी है और विनोद भी है। जो हैं तो दोनों हैं और नहीं तो दोनों नहीं ! अथवा कभी एक और कभी दूसरा !”

“वाह ! सब कुछ कह दिया और कुछ भी नहीं कहा। आपके ऐसे तर्क से मैं गँवारी क्या समझूँ कि आपके मन में क्या है ? पहेली न बुझाइए। भाफ कहिए कि आपके मन में क्या है ? इस दासी को अच्छी तरह समझा दीजिए कि आपके मन में क्या है ? आप विनोद से कहते हैं और मेरे ऊपर सौ घड़े पानी पड़ जाता है !”

“अच्छा ! तू ही कह कि मेरे मन में वहम है अथवा विनोद ? जब मेरे दिल का तेरे दिल में टेलीफोन है तब तू स्वयं सोच सकती है कि वहम है या विनोद ! तैने तो दावा किया है न कि तू दूसरे के मन को पहचान सकती है ?”

( १६३ )

“वेशक ! दावा किया है और आव भी मेरा दावा है। मैंने उसके हाव, भाव और कटाक्ष से जान लिया था कि उसका मन निर्विकार है। जैसा तप उसके मुख पर वरणा गुफा के निकट झलकता था वैसा ही आबू पर। फिर आप भी तो बतलाइए कि वह कहाँ तक निर्दोष था ?”

“हाँ ! मैंने मान लिया, मैं पहले ही से मान रहा हूँ कि तू निर्दोष है और जब तू हृदय है तब यदि उसका मन भी विचलित होता तो वह तेरा कर ही क्या सकता था ? परंतु तेरे मन में संकल्प भी क्यों हुआ कि उसके पास रात्रि में जाना चाहिए और सो भी बेदा माँगने के लिये ?”

“संकल्प वेशक हुआ। और हुआ भी इसी लालसा से किंतु बूढ़ी माँ के परामर्श से हुआ और आपको और उन्हें साश्ले जाने के इरादे से ! इरादा वास्तव में हुआ और सो भी नारी-हृदय को उस अलौकिक वासना के कारण ! पुरुषों की अपेक्षा रमणियों को अपनी संतान यर अधिक प्रेम होता है। खियों की सृष्टि ही इसलिये है कि प्रजा की वृद्धि हो। विवाह ही संतान की उत्पत्ति के लिये किया जाता है। माता ही पिता की अपेक्षा संतान पैदा न होने से, गर्भ की यंत्रणा से, प्रसव की वेदना से और संतान के लालन पालन में अधिक कष्ट पाती है किंतु स्नेह भी उसका अलौकिक है, अमानुषी है, दैवी है। यदि दैवी नहीं है तो पश्चु पञ्ची अपनी संतान का लालन पालन किस सेवा के लिये, किस कमाई के लिये करते हैं। केवल

संतान के लिये नारियाँ न मालूम क्या क्या कर डालती हैं, ताजियों के नीचे निकलती हैं, पीर पैगंबरों को, भूत प्रेतों को, कबरों और मसानों को पूजती हैं। यदि आप थोड़ी देर के लिये रमणी वन जायें तब आपको हमारा हृष्य मालूम हो सके ।”

“नारी न बनने पर भी मैं हृष्य से उस अलौकिक वासना का अनुभव कर रहा हूँ। नारी भी तो एक बार तू वना चुकी है किंतु वासना वही करनी चाहिए जो अपने हाथ हो, उपाय वही करना चाहिए जो निर्दोष हो ।”

“वासना बेशक मेरी थी और उसका नतीजा भगवान् के हाथ था। और मनुष्य की यावत् वासनाओं का परिणाम परमेश्वर के अधीन है। जब छोटी जाति में संतान उत्पन्न करने की स्वाभाविक वासना है तब मैंने भी की तो बुरा क्या किया? संतान बिना गोद सूनी, घर सूना और कुल सूना पाकर और अपना कर्तव्य पालन करने के लिये, अपना जीवन सार्थक करने की इच्छा से मैंने वैसा किया था ।”

“वास्तव में सत्य है। मैंने मान लिया कि तेरी इच्छा निर्दोष थी परंतु जो उपाय तैने सोचा था वह उचित नहीं था। भयंकर था। उसका परिणाम शायद यहाँ तक हो सकता था कि हम दुनिया में मुँह दिखाने योग्य न रहते ।”

“हाँ यह मेरी भूल है। यों तो मेरा इरादा आपको साथ लेकर जाने का था। आपकी सहगामिनी रहने में भय नहीं किंतु इरादा भी करना अच्छा नहीं ।”

( १६५ )

“खैर ! तैने अपनी भूल स्वीकार कर ली । तब मैं पूछता हूँ कि यदि वह निर्दोष था तो उसने रात्रि को तुझे क्यों बुलाया ?”

“उसका चेहरा निर्विकार था, तप उसके मुख के भाव से टपका पड़ता था इसलिये मानना पड़ेगा उसने मुझे बुरी नीयत से जहाँ बुलाया । उसने बुलाया था मंत्र देने के लिये और दिन में अवकाश न मिलने से, आहिक के निपट जाने पर रात्रि के समय देने के लिये । तिस पर भी मैं भूल स्वीकार करती हूँ । भूल जगज्जननी जानकी से हुई है । मैं विचारी गँवारी किस गिनती में !”

“अच्छा भूल स्वीकार करती है तो बोल हारी !”

“एक बार नहीं लाख बार हारी । आपसे तो हारने में ही शोभा है, हारने में ही कर्तव्यपालन है !”

“अच्छा हार गई तो दंड ! दंड भी भोगना होगा ।”

“पर दंड आपने क्या सोचा है ?”

“प्रथाग का सा साफा और कोट !”

“नहीं सरकार, ऐसा नहीं होगा ! मैं एक बार पहन चुकी ! अब पारी आपकी है । आपको पहनना पड़ेगा । पहनकर वादा पूरा करना होगा । आज मैं अपने हाथों से पहनाऊँगी । पगड़ों की जगह साढ़ी, धोती के बदले लहँगा और कोट की ठौर छँगिया पहनाऊँगी और रुच रुचकर सजाऊँगी । ऐसी सजाऊँगी जिससे कोई पहचान न सके कि आप पंडित प्रियंवदानाथ हैं ।”

( १८६ )

“भला तो पक्की ठान ली ? सचमुच ही ? जरूर ही ?  
तब “प्रियानाथ” क्यों नहीं ?”

“हाँ ! हाँ ! ( कुछ भेषजकर ) सत्य ही ! और सो भी  
इसलिये कि जीवे को हराना चाहिए, हारी को जिताना  
चाहिए । मैं एक बार हारकर आपना सर्वस्व अपेण कर चुक्की ।  
पितामह शीघ्र ने आपना सर्वस्व अपेण करके ही भगवान् को  
हराया था । श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा उड़वा दी थी । वस में  
भी हराऊँगी ।” इस तरह कहकर भगवान् पुष्पधन्वा के बाणों  
का प्रयोग करती हुई खूंटी पर से कपड़े उतारकर ज्योंही  
हँसते हुए, मुस्कुराते मुस्कुराते वह पहनाने लगी त्योंही  
किवाड़ अकस्मात् खटके । बाहर से कुछ सुरभुराहट की  
हलकी सी आवाज आई और तब “हाय यह फिर वया  
गजब हो गया !” कहकर वह उसी दम मूर्छित हो गई ।  
“है ! है ! बावली यह क्यों ? क्या अब भी तेरे दिमाग में  
से भूत का भय नहीं निकला ?” कहते हुए प्राणनाथ ने  
शीतोदक्ष सिंचन से प्यारी के नेत्र युगलों का अभिषेक किया  
और साथ ही शोड़ा सा ठंडा ठंडा शरवत पिलाया । कोई  
पाँच भिन्न में जब उसके होश ठिकाने आ गए तब प्रियं-  
वदा कहने लगी—

“आपके पुण्य प्रताप से भूत बेशक आब नहीं रहा किंतु  
मेरे अंतःकरण से अभी तक भय नहीं निकला । योंही मुझे  
रसी का साँप दिखलाई दिया करता है ।”

( १६७ )

“भय न निकलने में तेरा कुसूर नहीं । प्रथाग और गया की घटना ने मुझे भी मनवा दिया कि यह भी कोई योनि है । जिन बातों का तर्क सावित नहीं कर सकता वे अनुभव से प्रमाणित होती हैं । परंतु जैसे अनुभव ने यह सावित कर दिया कि ( रोकर ) माता को प्रेतयोनि मिली थी वैसे ही यह भी तो प्रमाणित कर दिया कि उसकी मोक्ष हो गई । फिर डरती क्यों है ?”

“अरकार उरना खियों का स्वभाव है । उनकी रक्षा करने का साधन है । एक बार जब भय अंतःकरण में प्रवेश कर जाता है फिर उसका निकलना मुश्किल है । केवल भय ही नहीं, नारी-हृदय में बुरे वा भले जैसे संस्कार अंकित हो जाते हैं उनका निकलना कठिन है । रसगी-हृदय बजा से भी कठोर और कमल से भी कोमल है । परंतु क्यों जी, उनको ऐसी योनि क्यों मिली जिन्होंने आजीवन कोई पाप नहीं किया ? जिन्होंने पचास वर्ष अपने सतीत्व की रक्षा करके विधवापन में निकाल दिए और जो सदा ही भगवान् के भजन में अपना मन लगाए रहती थीं उन्हें ऐसा दंड ? कुछ समझ में नहीं आता ।”

“अवश्य ऐसा ही है । वह मेरी जन्मदात्री न सही परंतु माता से भी बढ़कर थीं । उन्होंने हमारा लालन पालन किया है । यह शरीर उन्हीं के अनुग्रह से है । वह हमें पेट के बेटों से भी बढ़कर समझती थीं । उन्होंने जब से जन्म लिया तब से कभी सुख नहीं पाया था । हमारं दुःख को अपना दुःख और

हमारे सुख में अपना सुख मानने से ही उन्हें आसक्ति हुई। बस यह आसक्ति ही सब भगड़ों की जड़ है। केवल आसक्ति से ही जब कीड़ा भँवर हो जाता है तब वही उसे इख योनि में घसीट ले गई। घसीट ले जाने पर भी उसके सद्गुणों के प्रभाव ने, उसके सुकर्मों ने उसे प्रेतयोनि पाने पर भी कुकर्मों में प्रवृत्त नहीं होने दिया, इसलिये ही उसने तुमको सताने के व्याज से सुभाया और अल्प पाप का, अल्प आसक्ति का अल्प ही ढंड मिलकर उसका लूटकारा हो गया।”

“हाँ ठीक है। यथार्थ है। वास्तव में उन्होंने मरने पर भी हमारी भलाई की। यह ( बालक को दिलाकर ) उन्होंने आशीर्वाद का फल है। उन्होंने खयं दुःख उठाकर हमें सुख पहुँचाया। हमें अपने कर्तव्य की, गया-आद्वादि करने की, यात्रा का सुख लूटने की याद दिलाई। धन्य है ! लाख बार धन्य है !! मैं अब वहुत पछताती हूँ। उन्हें बुरा भला कहने पर अपने आपको धिक्कारती हूँ। अब, जब मैं सोचती हूँ तब निश्चय होता है कि उनके जीते जी मैं जो उनसे अपना दुःख मानती थी सो भी भूल से। उसमें दोष मेरा ही था। उनकी सीधी शिक्षा भी मुझे टेढ़ी लगती थी। भगवान् इस पाप से मेरी रक्षा करे।”

जिस समय इनका इस तरह संभाषण हो रहा था फिर वही पहले की सी आवाज आई। “कोई है ? बाहर कोई अवश्य है। शायद कोई तुम्हे बाहर बुला रहा है।”

“रात के बारह बजे मुझे कौन निगोड़ा बुलाने आया ?”

“शायद घुरहू ही या आबू का साधु !”

“नहीं जी ! हर बार की दिल्लगी अच्छी नहीं । बाहर से कोई सुनता हो तो न मालूम क्या समझे ? आग लगे उन दोनों के ! एक तो गया जहन्नुम में और दूसरे का भी मेरे सामने नाम न लो ।”

“खैर तो और कोई होगा, शायद वहु आई हो । आज खोटा भैया भी तो यहाँ नहीं है । जीजी को अपना दुख दर्द सुनाने आई हो ! जल्दी किवाड़ा खालकर देख तो कौन है ?”

“नहीं मैं न खोलूँगी । मुझे भर लगता है । फिर आपके लिये कोई नई दिल्लगी खड़ी हो जाय ।”

इतनी बातचीत हो चुकने पर पंडित जी खड़े हो गए । प्रियंवदा ने किवाड़ खाले । किवाड़ खुलते ही लालटैन लिए हुए सुखदा संकोच से पीछे को हटी और तब “बहन क्या बात है ?” कहकर प्रियंवदा ने उसे रोका । पंडित जी हटकर अलग चले गए और देवरानी जेठानी में इस तरह बातें हुईं—

“मैंने यहाँ आकर तुमको जगा दिया । मैं माफी माँगती हूँ परंतु करूँ क्या ? ( लड़के की ओर इशारा करके ) आज न आप सोता है और न मुझे नींद लेने देता है । बस “अम्मा ! अम्मा !!” की रट लगाकर इसने मेरा बुरा हाल कर रखा है । मैंने तो पहले ही तुमसे कह दिया था कि यह मेरे पास न रहेगा । बस सँभालो अपनी धरोहर ताकि मैं सुख से सोऊँ ।”

( २०० )

“हाँ बीर ! मेरी धरोहर । वस सुझे भी यही चाहिए ।  
दिए जा ऐसी ऐसी धरोहरें और मेरे भरोसे सुख से सो ।  
जितने होंगे सबको मैं अबेर लूँगी ।”

“वस वस ! ( सुसकुराकर ) दिल्ली न करो । भगवान्  
ने जो दिए हैं वे ही सुख से रहें ।” कहती हुई बालक को  
जेठानी की गोदी में देकर मुखदा अपने कमरे में जा साई और  
इधर छोटा नन्हा बड़े भाई को पास जाकर सो गया । दोनों  
को सुलाकर वस वे दोनों भी सो गए ।

---

## प्रकरण—६६

### बालशिक्षा और परोपकार ब्रत

भोला कहार पहले ही कामचोर था। अब उसे अच्छा बहाना मिल गया। अपने अपने मालिकों की धोतियाँ धोने का काम तो दोनों बहू रानियाँ करती हैं, बरतन चौका करने और भाड़ बुहारे के काम पर, पानी भरने पर दो नौकरनियाँ अलग हैं किंतु कामचोर भोला से दोनों मालिकियों की धोतियाँ धो देना भी नहीं बनता है। घंटों तक धोतियाँ पड़ी पड़ी पानी में मट्टी से और धूल से खराब हो जायें तो कुछ पर्वाह नहीं। “निपूता धोता अच्छो तरह है। खूब कछारकर धोता है इसलिये उसके भरोसे छोड़ देती हैं। नहीं तो हम ही धो डालें तो क्या हमारे हाथ चिस जायें,” कहकर प्रियंवदा कई बार उसे फटकारती है, गुस्से में आकर सुखदा दोनों धोतियों को जेठानी के मना करने पर भो धो डालती है और उसकी ऐसी हरकत देखकर कांतानाथ कभी कभी उसके एकाध चपत भी जमा दिया करते हैं परंतु उसके लिये ऐसी फटकार, ऐसे ताने और ऐसी चपतें “हाथी पर अर्क फल की मार” की तरह कुछ असर थोड़े ही करती हैं? बहाने बनाने को तो भोला मानों टकसाल ही ठहरा! यदि उसे कहीं भेजने की आघश्यकता पड़ी तो बहाना और जो कहीं घर का ही

कुछ काम बतला दिया तो वहाना ! और वहाना भी ऐसा बैसा नहीं । ‘बज्जों को खिला रहा हूँ । और ये रोने लगें तब ?’ बस इसलिये उसके कुसूर सुआफ हैं । बालक भी उससे ऐसे हिले हुए हैं कि बात न पूछो ! कोई उसे लातें मारता है, कोई उसे काटता है और कोई उसे गेंद मारकर भाग जाता है । इन दोनों बालकों के पास अड़ोस पड़ोस के कई बच्चे खेलने का आ जाया करते हैं । ये सब बालक आपस में कभी लड़ते हैं, कभी मार देते हैं, कभी गालियाँ देते हैं किन्तु भोला चुप ! उसे हँसने के सिवाय कुछ काम नहीं । इधर बच्चे खेला करते हैं और उधर भोला पड़ा पड़ा नींद में खुराटे भरा करता है । कोई बालक उसकी टाँग खींचता है तो चुप और कोई उसके कपड़े खींच भागता है तो “ ऊँ ऊँ ! यह क्या करते हो ? मैं आज मालिक से तुम्हारी चुगली खाकर न पिटवाऊँ तो मेरा नाम भोला नहीं । ” कहने के सिवाय चुप ! बालकों का जी इस पर और इसका बालकों पर देख-कर दोनों मालिकने इसे खाना भी अच्छा देती हैं । कभी कभी यह नाराज होकर जब रुठ जाता है तब बालक रो रोकर घर भर दिया करते हैं इसलिये इससे कोई विशेष कुछ कहता सुनता भी नहीं । बस इस तरह इसकी खूब पटती है ।

बड़े मालिक इससे अवश्य नाराज हैं । ऐसे तो नाराज नहीं जो कभी क्रोध में आकर इसे निकाल बाहर करें क्योंकि “बुरा या भला जैसा है पुराना नौकर है । कामचोर अवश्य

सही परंतु लैंगोट का सच्चा है, बैंडमान नहीं । यदि अन्गिनित रूपए दे दो तो भी क्या भजाल जो एक पाई का फर्क पड़े । ” अहीं उनका भोला के लिये सर्टिफिकेट है, और हजार उनके नाराज रहने पर भी इसी की वदौलत वह मैज करता है । फिर यदि पंडित जी नाराज होकर इसे निकालने को भी तय्यार हो जायें तो इसकी सिफारिश करनेवाले बहुत हैं । दोनों बालक तक तय्यार हैं । बस इसलिये उसे निश्चय है कि “मैं निकाला हरगिज भी न जाऊँगा । ” और जब उनके “जोरु न जाता अल्ला मियाँ से नाता” है तब उसे पर्वाह भी क्या ।

खैर ! इसे यदि पर्वाह नहीं है तो न सही परंतु पंडित जी को भय है कि कहाँ इसकी कुसंगत से बालक बिगड़ न जायें । इस समय उनकी कच्ची उम्र है । जैसा बाहर का संस्कार होगा वैसी ही उनका चरित्र गठेगा । कुम्हार मिट्टी के लोंदे को चाक पर रखकर जैसा बरतन बनाना चाहे वैसाही बन जाता है । ये बच्चे मिट्टी के लोंदा, भोला कुम्हार और चाक इनका खेल । इस बात से इन्हें पूरा खटका है क्योंकि इन्हें निश्चय है कि गौड़बोले की शिक्षा का, माता पिता की रक्षा का नन्हों पर उतना असर नहीं होगा जितना भोला के कुसंस्कारों का । सुखदा इन बातों की बारीकी समझनेवाली नहीं, काँतानाथ लज्जा के मारे चुप रह जाते हैं, प्रियंवदा सब बातें जानने पर भी “बालकों का मन मैला न होने पावे । ” इसलिये दर गुजर करती है । इसलिये पंडितजी

से कोई कहनेवाला है तो केवल गौड़बोले ! उन्होंने कई बार पंडित जी से कहा है और खैचकर यहाँ तक कह डाला है—

“यदि आप बालकों को इस तरह विशेष तो मैं चला जाऊँगा । आपका नुकसान युझसे देखा नहीं जाता । यदि आपके हजार रुपए की हानि हो जाय तो कुछ चिंता नहीं किंतु यह नुकसान जन्म भर का है, पीढ़ियों तक है, अटल है, अमिट है । देनों बालक कुशाग्रवृद्धि हैं । इन्हें विशेष समझाना नहीं पड़ता । विशेष रटाना नहीं पड़ता । छोटा लड़का कुछ ढीठ अवश्य है, जिहो है परंतु समय पाकर ये ऐब निकल सकते हैं । केवल आपके निरीक्षण की आवश्यकता है । इनकी शिक्षा दीक्षा का काम आपको अपने हाथ में लेना चाहिए । हाँ ! मैं जानता हूँ कि आपको अवकाश नहीं है परंतु इनके लिये आपको अवश्य फुरसत निकालनी पड़ेगी । ”

पंडित प्रियानाथ ने गौड़बोले की सम्मति पर ध्यान दिया । जैसे वह धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक और ऐसे अनेक ब्रतों के ब्रती थे वैसे ही उन्होंने यह ब्रत भी हड़ संकल्प के साथ प्रहण किया । बस पहला काम यही किया कि भोला की जागीर छिन गई । उसे खाने पहनने का टोटा नहीं । काम काज के लिये भी उससे विशेष कोई कहता सुनता नहीं परंतु वह मानता है कि “मेरे दिन भर गए ।” इसी चिंता से वह अब बहुत कुछ लट गया है, सूखकर काँटा हुआ जाता

है। यदि कुछ समझाया जाता है तो रो देता है और जब कभी जी में आता है तो भाग जाता है। उसे यदि कोई मनाने जाता है तो नहीं आता है किंतु जब भूख के मारे आँते बैठने लगती हैं तब खख बारकर आ जाता है। पंडित जी यदि उसे समझाकर गौड़बोले की सेवा के लिये नियत करते हैं तो—“जिसने मेरी परसी आली छोन लो उसकी कभी खाकरी न रखेंगा। काटकर ढुकड़े कर डाला तो इस डोकरे की धोती न धोऊँगा।” कहकर चुप हो जाता है और जो कहीं कांतानाथ उसे अजमेर ले जाना चाहें तो “मैं इस घर से मरा निकलूँगा जीते जी ( पंडित जी के चरणों को छूकर ) इन्हैं कभी न छोड़ूँगा। हाँ ! इनके साथ लंका जाने को भी तय्यार हूँ !” ये कहकर रो देता है। खैर ! जब उसका स्वभाव ही ऐसा है, जब उसको लिये खाने पहनने की कभी नहीं है तब उसे यों ही रहने दीजिए। उसे न अब इस किसे से मतलब है और न प्यारे पाठकों को उसका विशेष हाल जानने की आवश्यकता है।

हाँ ! इस जगह इतना लिख देना चाहिए कि अब दोनों बालकों की शिक्षा दीक्षा का अच्छा प्रबंध हो गया है। जो महाशय चित्त लगाकर इस किसे को “अथ” से लेकर “इति” तक पढ़ेंगे उन्हें यह जतलाने की आवश्यकता नहीं कि कमलानाथ और ईंदिरानाथ की शिक्षा किस तरह की दी गई। “हिंदू गृहस्थ” में शिक्षा का ढाँचा उसके लिये पहले

से मौजूद था ही, उसमें पंडित पंडितायिन और गौड़बोलो का अनुभव और संयुक्त कर लिया गया। आगे वे क्योंकर घर की शिक्षा से निवृत्त होकर हिंदू विश्वविद्यालय के “ग्रेज्युएट” हुए, उनका कब उपवीत, कब विवाह और कब उनके कार्य का आरंभ हुआ और वे कैसे निकले सो कहना इस किसे का विषय नहीं। हाँ ! यहाँ इतना अवश्य लिख देना चाहिए कि “सुख संपत्ति परिवार बड़ाई, धर्मशील पहँ जाहिं सुहाई !” इस लोकोक्ति के अनुसार जब ठीक हो गया।

किंतु गौड़बोलो के काम की यहाँ इतिकर्तव्यता नहीं थी। उन्होंने पंडित जी के परामर्श से, उन्हीं के द्रव्य से और उन्हीं के निरीक्षण में एक औषधालय और एक पाठशाला खोल रखी है। जब ये दोनों बालक और साथियों के साथ यहाँ पढ़ते हैं तब शिक्षा का क्रम तो वही होता चाहिए जो ऊपर कहा गया है। हाँ औषधालय का क्रम ऐसा है जिसमें लड़के पढ़कर, सीखकर बैद्य बनते हैं, जहाँ इलाज आयुर्वेद से और चीर फाड़ डाक्टरी के मत से होती है और जहाँ इलाज करने के लिये “सुश्रुत” में लिखे औजार बनवा लिए गए हैं और जहाँ नवीन, ताजी बनस्पतियाँ मिलने के लिये एक बाग भी लगा दिया गया है। केवल इतना ही क्यों किसी समय पूना के सुप्रसिद्ध स्वर्गवासी विद्वान् डाक्टर गर्दे महाशय ने बात, पिच, कफ तीनों दोषों की जाँच करने के लिये थर्मोमीटर का जो नमूना तय्यार किया था उसी से लाभ उठा-

कर इन्होंने नाड़ी-विज्ञान पर भी बहुत जोर दे रखा है। गौड़बोले का भत है—

“यदि समय के फेर से, राजाश्रय न मिलकर, वैद्यों की मूर्खता और सर्वसाधारण की उपेक्षा से हमारा आयुर्वेद मृत-प्राय भी हो जाय तो हो जाय किंतु जब तक हमारे ग्रंथ विद्य-मान रहेंगे वह नष्ट नहीं हो सकता। किंतु भय द्वा वातों का है। एक नाड़ी-विज्ञान ग्रंथगम्य नहीं। पढ़ने से नहीं आ सकता। यह अनुभवगम्य है और लगभग नष्ट हो चुका है और दूसरे ओषधि का लाना, जंगल से खोदकर लाना जब गँवार भीलों के हाथ में है, अपढ़ पंसारी ही उन्हें बेचनेवाले हैं तब सुझे भय है कि कहीं उनकी पहचान ही न मारी जाय।”

बस इसी विचार से उन्होंने उक्त प्रबंध आरंभ कर दिया है। इस उपन्यास-लेखक के मनोराज्य में गौड़बोलेजी को अपने कामों में सफलता हुई और उनकी नकल भी होने लगी है। प्रिय पाठक पाठिकाओं को अधिकार है कि वे इन वातों का अनुकरण करें अथवा यों ही चुप्पी साध जायें।

पंडित प्रियानाथ के स्नेहियों में गौड़बोले और दीनबंधु द्वा ही मुख्य हैं। गौड़बोले मित्र हैं और उनके आश्रित हैं, दीनबंधु उनके उपकारक और निरपेक्ष हैं। अब इतना अवश्य हो गया है कि कभी पंडितजी उनसे मिलने जाते हैं और कभी वही यहाँ आकर इनसे मिल लिया करते हैं। साल भर में जब तक द्वा चार बार भेट न हो तब तक दोनों को कल नहीं।

दोनों का द्वानों के यहाँ आतिथ्य भी खूब होता है किंतु “पंडित दीनबंधु के सामने लेने का कभी हरगिज भी नाम न लो ।” जब उनसे इस विषय में कुछ कहा जाता है तो कानों पर हाथ लगाकर सिर झुका लेने के सिवाय, कृतज्ञता के भार से दब जाने के धृतिरिक्त चुप। यदि पंडितजी चुपचाप उनके बालों में कुछ बाँध देने का प्रयत्न करते हैं अथवा बाँध ही देते हैं तो “बस ज्ञाया कीजिए ।” कहकर ब्राह्मिक कर देते हैं। उनका नियम है कि लांक-हित-कार्य में कभी किसी से सहायता न लेनी। जिसका उपकार बन पड़े उनसे यदि किसी काम के लिये कुछ लिया जाय तो बला हो जाय। वह कहा करते हैं कि “दुनिया में ऐसे हजारों काम हैं जिनमें दूसरे की सहायता की अपेक्षा नहीं ।” बस इसी उद्देश्य से वह चुपचाप दीन दुखियों की सहायता किया करते हैं। किस तरह किया करते हैं सो यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। बस निःस्पृहता की, परोपकार की और कर्तव्यपरायणता की पंडित दीन-बंधु पराकाष्ठा हैं। पंडित प्रियानाथ आजीवन उनके कनौड़े हैं और प्रियंवदा जब जब उनके दर्शन पाती है तब तब उसके हृदय में पितृभाव का संचार होकर वह गद्गद हो जाया करती है। वह चाहे संकोच से कुछ न कहे परंतु उसके नेत्र-कमलों से कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिये आँसुओं की झड़ी लग जाती है, और “बेटी रो मत। मैंने कुछ भी नहीं किया। मुझ जैसे तुच्छ कीटानुकीट से बन ही क्या सकता

( २०६ )

है ! जो कुछ किया परमेश्वर ने किया है । वही नारियों के शील की रचा करनेवाला है ।” कहते हुए उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे शांत कर देते हैं ।

पंडित दीनबंधु जब यहाँ आते हैं तब वचों के लिये कुछ अवश्य लाते हैं । वह “ना ना !” कहते पर भी उन्हें देते हैं और जो कुछ देते हैं वह उनकी परीक्षा लेकर । परीक्षा भी उनकी कड़ी है, पुस्तक-संवंधिती नहीं, व्यावहारिक । और वह मिठाई नहीं देते, पैसा नहीं देते और कपड़े नहीं देते । अपनी यात्रा में जहाँ से उन्हें कोई ऐसी चीज मिल जाय जो “कम खर्च बाला नशील” हो और जिससे बालकों का ज्ञान बढ़े वही उनका इनाम है । बस इस तरह उनकी आनंद से गुजरती है । हिंदी के कितने सुलेखक महाशय “डिटेक्टिव” कहानियाँ लिखने और अनुवाद करने के साथ यदि पंडित दीनबंधु जैसे सच्चे परोपकारी का किसी उपन्यास में चरित्र अंकित करें तो अधिक उपयोगी हो सकता है । लेखक की यही प्रार्थना है ।

---

## प्रकरण—६७

### होली का त्योहार

पंडित प्रियानाथ जी विद्वान् थे, भगवान् के अनन्य भक्त थे, सच्चे सनातनधर्मविलंबी थे, व्यवहारकुशल थे और कुशाप्रबुद्धि भी। उनकी मानसिक शक्ति असाधारण थी और यों वह हिंदूपन का एक उत्तम नमूना थे किंतु क्या इन गुणों के साथ वह रोनी सूरत थे ? यद्यपि प्रियंवदा के साथ समय समय पर थोड़ा बहुत हँसी मजाक प्रकाशित होता रहा है किंतु छासठ प्रकरण रँग डालने पर भी अब तक जब उनके विनोदीपन की बातगी नहीं दिखलाई गई तब यदि पाठक उन्हें “रोनी सूरत” समझ ले तो उनका दोष क्या ?

अस्तु ! यदि पंडित जी इन गुणों के साथ विनोदप्रिय न हों, ख्ययं हँसना और दूसरे को हँसा देना न जानते हों और सदा ही गंभीर बने बैठे रहें तो वह “आदर्श हिंदू” का हो के ? मुखलमान ताजियादारी करते हैं, ईसाइयों में भोजन के समय चार आँसू गिराना भगवान् की कृतज्ञता है किंतु हिंदुओं के यहाँ कोई त्योहार ऐसा नहीं, आद्व-पञ्च तक ऐसा नहीं, जिसमें रोने की आवश्यकता हो। हिंदुओं के प्रत्येक धर्म में, संस्कार में और काम काज में आनंद है। हँसी ठट्ठा आदमी के दिमाग को शोक संताप से रहित करके आनंद में मग्न

और ताजा कर देने की मुख्य सामग्री है ! जो हँसना या हँसाना नहीं जानता अथवा दिन रात की साठ घड़ियों में जो एक दो बार भी नहीं हँस लिया करता है वह सचमुच ही या तो योगी है अथवा पशु है । योगी भी राजा जनक की श्रेणी का नहीं, “गृहेषु पंचेत्रियनिग्रहं तपः” का अनुयायी नहीं, दुनियादारी में रहकर राग द्वेष छोड़ देनेवाला, फल की आकर्त्त्वा छोड़कर अपने वर्षायिम धर्म के अनुकूल कार्य साधन करते हुए उन कामों में निर्लिपि रहनेवाला योगी नहीं— वह हिमालय-गिरि-गुफा में भगवानि चढ़ाकर कंद मूल फल से अपना गुजारा कर लेनेवाला, आदमी की सूरत से बृणा करनेवाला योगी है । बस पंडित जी प्रथम ‘योगी’ के योगी थे । वह बूढ़ों में बृद्ध, जवानों में युवा और बालकों में बच्चे बनकर रहते थे । जिस समय उन्हें व्याख्यान देने का, साधारण बातचीत करने का अथवा यों ही खाली बैठे रहने का अवसर मिलता अथवा किसी को मन मारे देखते तो वह एक ही बात ऐसी कह डालते जिससे सबके सब खिल-खिलाकर हँस पड़े । किंतु उनकी एक बात भी फूहड़ नहीं, अश्लील नहीं, भद्री नहीं और मतलब से खाली नहीं, वे वहाने से बोशबल के से उपदेश देनेवालों में हैं ।

एक बार किसी सुधारक अफसर ने नई टक्कसाल में ढलकर धोबी से ब्राह्मण बने हुए व्यक्ति को अपने दफ्तर में कुर्की की जगह दे दी । दूसरे दिन पंडित जी घर के कपड़ों

की मोट बाँधकर नदी पर धोने के लिये पहुँचे । वहाँ जाकर वहाँ भट्टी में मैले कपड़ों को गर्म पानी में उबालना, स्वार या सातुन लगाकर सुखाना और तब “संचो राम ! संचो राम !!” की आवाज के साथ उन्होंने कपड़े धोना आरंभ किया । वह जानते थे कि अफसर महाशय थोड़ी देर में इधर होकर निकलनेवाले हैं । सचमुच साहब उस तरफ आए और पंडित जी की ऐसी रचना देखकर कहने लगे—

“हैं हैं !! आज यह क्या ? आज धोबी का काम क्यों ?”

“हाँ साहब ! सीखता हूँ । अब नए जमाने में नई टक्साल से जब धोबी से ब्राह्मण बनने लगे हैं तब उनका काम कौन करेगा ?”

“बेशक !” कहकर अफसर महाशय कुछ सुसकुराप, कुछ शर्माए और छछड़ी उठाकर वहाँ से चल दिए । तीसरे ही दिन उन्होंने नए कुर्क का हुक्म दे दिया—

“तुम पंद्रह रुपए महीने की कुर्कों के बदले अँगरेजी हंग से कपड़े धोने की दूकान खोलो । उसमें तुम्हें पचास मिल जाया करेंगे ।”

बस इस प्रकार का जवाब पाकर धोबीराज वहाँ से चले गए । उस दिन पीछे उनका क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं, और न कुछ मतलब है ।

खैर ! पंडित जी जब ऐसे चिनोदी थे तब उनके यहाँ होली का त्योहार न मनाया जाय तो बात ही क्या ? आज

होली है। पंडित जी का कमरा वसंती रंग के सामान से लाजाया गया है। आज परदे वसंती हैं, लंप वसंती हैं, फर्श वसंती है और उनके कपड़ों के सिवाय सब कुछ वसंती है। चार पाँच बड़े बड़े शांतों में तरह तरह की गुलाल भरी हुई है, और इसका हुआ है, कुंकुमे घरे हैं, अनेक डालियाँ भाँति भाँति के पुष्पों से डट रही हैं, पान की, इलायची की, लवंग की, और छालियों की भरमार है। कभी डक पर होली गाई जाती है, कभी तबला ठनकने लगता है और कभी सितार की ताना रीरी। हार्मोनियम अलग। आमोकोन अलग। आज जाति पाँति का भेद भाव नहीं। छोटे बड़े का विचार नहीं। सब होली गाते हैं और पिचकारियाँ भरकर आनेवालों के कपड़े रँगते जाते हैं। जो आता है उसके गालों पर गुलाल मलकर खूब गत बनाते हैं। कभी बालकों से होली खेलते हैं और कभी बूढ़ों से। आज बालक और बूढ़े समान हैं। यदि कोई “है है !” या “नाहीं नूहीं” करता है तो उसकी खूब खबर ली जाती है। ऐसे ही एक महाशय कर्म भयोग से वहाँ आ निकले हैं। उनकी होली पर घृणा देखकर नवागत महाशय को सब लोगों ने घेर लिया है, कोई उन पर गुलाल डालने को तैयार है और कोई पिचकारी मारने को। उन्होंने इन हालियारों में से निकल भागने का भी बहुत प्रयत्न किया है किंतु लाचार। तब उन्होंने कड़क-कर, आँखें निकालकर, छड़ी उठाते हुए कहा—

“खबरदार, पिचकारी का एक भी छांटा लगा तो आभी खापड़ी फोड़ दूँगा। कथा वाहियात त्योहार है। बेहूदगी की हड़ हो गई। इस बेहयाई का भी कुछ ठिकाना है ?”

“नहीं साहब ! बेहूदगी नहीं। बेहयाई नहीं। अतुराज वसंत की लीला है। बेहयाई और बेहूदगी का बुखार निकाल देने का दिन है। भगवान् पंचशायक का केवल एक ही दिन में उभरा हुआ जौश निकालकर साल भर तक सभ्यता से रहने के लिये शुभ मुहूर्त है, देशी गँधारीं की होली और विदेशी विद्रोहीं का ‘एप्रिल फूल’ है, काम-विकारीं का उफान रोकने के लिये पानी के छाटे हैं।”

‘कुछ भी हो। है बेशक वाहियात ! ब्राह्मण और भंगी चमार सब एकाकार ! कीचड़ और पनाले का त्योहार ! गाली गलौज का सत्कार और दुराचार में प्रवृत्त करने का साधन !’

“नहीं साहब ! वाहियात नहीं ! यह हिंदुओं का चार में से एक जातीय त्योहार है। जो लोग छुआछूत से, जाति-मेद से अथवा पंक्ति-मेद से देश का विनाश मानते हैं उनके लिये मुँहतोड़ जवाब है। यह त्योहार डंके की चोट दिखला रहा है कि हिंदुओं में सैकड़ों जातियाँ होने पर भी, आपस में खान पान का व्यवहार न होने पर भी और छुआछूत की असाधारण छीछालेदर होने पर भी सब एक हैं। धार्मिक कामों में एक हैं, सामाजिक कामों में एक हैं और इतने

( २१५ )

एक हैं जितने इन बातों को वाहियात समझतेवाले एक नहीं। आपके एके में लखपती कंगाल को, अफसर मातहत को और बड़ा छोटे को पास बिठाने से भी धृणा करते हैं किंतु यहाँ आज राजा रंक एक हैं।”

“अच्छा, परंतु है तो कीचड़ पनाले का ही त्योहार ?”

“जिनके लिये है उनके लिये हो भी सकता है किंतु कीचड़ पनाले का शूद्रों के लिये, अंत्यजों के लिये अथवा शराबियों के लिये होगा। द्विजों के लिये, उत्तम शूद्रों के लिये अबीर है, गुलाल है, कुंकुम है और रंग है। होली सबके लिये समान है, उमंग एक सी है किंतु अधिकारी-मेद से सामान जुड़े जुड़े हैं। आप जब दरबार में जाते हैं तब कुर्सी पाते हैं और गेंदा धोबी चौखट तक भी नहीं पहुँचने पाता।”

“और वही विद्वान् हो तो हमारे बराबर कुर्सी पावेगा।”

“हाँ होली के लिये तो ऐसा हो सकता है कि गेंदा शराब पीना छोड़ दे और कीचड़ के बदले अबीर काम में लाने लगे किंतु दरबारी कुर्सी उसे नहीं मिलनी चाहिए। आप आप ही हैं और धोबी धोबी ही है। ऐसा न हो तो आपको उसे अपनी कुर्सी देकर धोबी बनना पड़ेगा।”

“अच्छा माना मैंने कि आपकी यह दलील ठीक है परंतु वाही तबाही बकना, शिष्ट पुरुषों के सामने, छी-समाज के आगे गालियाँ बकना, कबीर गाना किस काम का ? यह बेहूदगी तो व्यभिचार फैलानेवाली है।”

“नहीं ! व्यधिचार को रोकनेवाली है । काम-विकारा के उफान को निकाल देने के लिये हल्का सा जुलाव है, साल भर के तीन सौ पैसठ दिन तक जो चित्त-वृत्तियाँ धर्म के वंशन से, समाज के भय से रुकी रहती हैं उन्हें एक दिन में निकालकर निर्विकार होने का साधन है । खो-पुरुषों का, परस्ती का परपुरुष के साथ कमर मिलाकर नाचने से यह हजार दर्जे अच्छा है । दोनों के उद्देश्य एक ही हैं । प्रकार में भेद है और परिणाम में भी भेद है । मनुष्य की चित्त-वृत्ति स्वभाव से इस ओर जा रहा है । लगाम ढाली छोड़ देने से थोड़ा अवश्य सरपट दैड़ते दैड़ते सवार को गिरा देगा । बस लगाम कसकर उसे खूब दैड़ा लीजिए ताकि आप गिरें नहीं । किंतु जब आप उसे स्थान में ला बांधें तब दुलत्तियाँ भाड़ने के लिये उसे आजाइ कर दीजिए ।”

“अच्छा यह भी मान लिया परंतु आप जैसे विद्वानों के यहाँ रंडी का नाच । बस ! पंडित होकर आज तो आपने कमाल ही कर डाला । अब दुनिया में इससे बढ़कर बुराई ही कौन सी है जिसे आप छोड़ेंगे । रंडी सब बुराइयों की जड़ है । जुआ, शराब, पाप सब इसके गुलाम हैं ।”

“जैसा साज है वैसा सामान है ।” “जस कालिय तस नाचिय नाचा ।”

“तब, आपने मंजूर कर लिया कि रडीबाजी करने में कोई दोष नहीं है । ऐसी दशा में आप अपने यहाँ इस बात का भी एक स्कूल खोल दीजिए ।”

“नहीं! आप मेरा मतलब समझे नहीं। वेशक रंडियाँ समाज में एक बला हैं। तब ही शिष्ट पुरुषों ने इनकी निंदा की है। वेश्यागमन करनेवाले को राजदण्ड मिलता है, वह समाजच्छुत किया जाता है और सबसे बढ़कर यह कि वह लोगों की आँखों से गिर जाता है। परंतु इससे आप यह न समझ लीजिए कि ये समाज से निकाल देने के लायक हैं, फिजूल हैं और इन्हें बंद कर देना चाहिए। नहीं! इनकी भी समाज के लिये दो कारणों से आवश्यकता है। एक यह कि जब गाने बजाने और नाचने का पेशा करनेवाली हमारी सोसाइटी में न रहेंगी तब कुल-वधुएँ इस काम को ग्रहण करेंगी। मैसूर और मद्रास प्रांत में जहाँ रंडो का नाच बंद कर दिया गया है वहाँ भले घर की बहू वेटियाँ को नाचना गाना सिखाने के लिये स्कूल खोलने का अवसर आया है। नृत्य और गायन पर मनुष्य की स्वभाव से प्रवृत्ति है। उसको पूरा करने के लिये दोनों मार्ग खुले हुए हैं। आप यदि रंडो का नाच बंद करेंगे तो एक दिन आपको बहू वेटियाँ अवश्य नचानी पड़ेंगी।”

“परंतु महाराज! रंडियाँ तो देश में व्यभिचार फैला रही हैं, लड़कों को बिगाड़ रही हैं।”

“वेशक बिगाड़ रहो हैं और जहाँ तक बन सके समाज से भय दिलाकर ऐसा कुर्कम बंद करना चाहिए परंतु समष्टि रूप से समाज पर दृष्टि डालिए तो इस काम के लिये भी

इनकी आवश्यकता है। जिस समाज में वेश्याएँ न हों उसके सौ गृहस्थ लेकर उनमें व्यभिचार कितना होता है, इसकी गणना कीजिए और तब हिंदू समाज के सौ गृहस्थों से तुलना कीजिए तब आपको मालूम हो जायगा कि वेश्याएँ किस सिद्धांत पर सिरजी गई हैं। इस तरह वे अवश्य अपना आपा बिगड़ रही हैं, अपना सर्वस्व नष्ट कर रही हैं किंतु हिंदू-नारियों के सतीत्व की रक्षा करती हैं। जैसे बड़े नगरों में सड़क के निकट जगह जगह पनाले बने हुए हैं, यदि वे न बनाए जायें तो चित्तवृत्ति को, शरीर के विकार को न रोक सकते पर लोग बाजार और गलियों को खराब कर डालें उसी तरह यदि वेश्याएँ हमारे समाज से उठा दी जायें तो घर की बहू बेटियाँ बिगड़ेंगी।”

“हाँ ! यह ठीक है परंतु आपकी दोनों रायें परस्पर विरुद्ध हैं। इधर आप रंडियाँ रखना भी चाहते हैं और उधर रंडोबाजी बंद भी करवाते हैं। “दोष एक संग न होइ भुवालू; हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।” दोनों बातें कैसे निवहेंगी।”

“क्यों नहीं ? बराबर निभ सकती हैं। समाजच्युत होने का भय, सदाचार की शिक्षा और वेश्यागमन की ओर, परस्पी-गमन की ओर प्रवृत्ति न होने पावे ऐसे बंधन वसतीनों का निर्वाह होना चाहिए। यदि इन बातों पर ध्यान रहे तो कभी कोई नर नारी तुराई की ओर नहीं झुक सकते।”

“वेशक ब्रह्मचर्य बहुत ही बढ़कर है।”

( २१६ )

“हाँ ! परंतु आप लोगों की राय का ब्रह्मचर्य नहीं । वोस पचीस वर्ष तक कुँवारा कुँवारी रखकर शिकार खेलने की आजादी नहीं । क्या खो छौंगीर क्या पुरुष, दोनों को कुसंगति से बचाकर सुसंगति में प्रवृत्त करना तो मुख्य है परंतु शरीर-संगठन केरकर रजोदर्शन के काल से कुछ ही पहले विवाह, शरीर ही की स्थिति देखकर विवाह से प्रथम, तृतीय अथवा हृद पंचम वर्ष में गौना, केवल श्रुतुकाल में गमन, पातित्रत तथा एकपक्वीत्रत, यही हमारा शास्त्र के अनुसार ब्रह्मचर्य है । लड़कों से ड्योढ़ी लड़के की उमर, पुरुष का तीस पैंतीस वर्ष के बाद विवाह नहीं ।”

“आपकी सब बातें यथार्थ हैं । वेशक होना भी ऐसा चाहिए । परंतु जैसे आपने होली को हमारा जातीय त्योहार साबित किया उसी तरह सलोना, दशहरा और दिवाली की भी तो व्याख्या कीजिए ।”

“होली की विशेष व्याख्या “होली के रहस्य” में प्रकाशित हुई है । और त्योहारों की व्याख्या का आज समय नहीं । आज समय है हँसी खुशी मनाने का ।” बस इतना कहकर पंडितजी ने ज्याँही नवागत महाशय के गालों पर गुलाल मली किसी की पिचकारी, किसी का कुमकुमा और किसी के मुट्ठी भर गुलाल ने उनको व्याकुल कर दिया । “बस बस ! बहुत हुआ । मुआफ करो !” कहते हुए उन्होंने डफ उठाया और उसे बजाकर जब वह सूरदासजी के पद गाने लगे तो एकदम सञ्चाटा छा गया ।

गाने बजाने के अनंतर जलसा स्वतम हुआ । फिर सभय पाकर पंडित जी ने उस व्यक्ति को समझा दिया कि अनादि काल से जैसे हिंदुओं की ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार जातियाँ हैं वैसे ही सलानों, दशहरा, दिवाली और होली चार वर्षों के चारों त्योहार हैं । सलोनों को उपार्कर्म ब्राह्मणों का, दशहरे को विजय-यात्रा चत्रियों का, दिवाली को लद्मी का पूजन वैश्यों का और होली की धूमधाम शूद्रों का, ये चारों वर्षों के चार त्योहार हैं किंतु हैं चारों चारों हो आए । ये हो हमारे जातीय त्योहार हैं । उत्साह ही जाति का जीवन है और ये त्योहार हमारा उत्साह जागृत रखने के मुख्य साधन हैं । पर साथ हो यह भी आवश्यक है कि इन त्योहारों में जो अनुचित बातें आ गई हैं उनका सुधार होना चाहिए, उन्हें एकदम उठा देना ठीक नहीं ।

## प्रकरण—६८

### कुलदा का पछतावा

“बेशक कुसूर मेरा हो है। मैंने जैसा किया वैसा पाया। मैं अगर अपने व्रत पर दृढ़ रहती, सुखदा को विगड़ने की कोशिश न करती तो कोइ चूने का ही समय क्यों आता? मैं बड़ी पापिनी हूँ। तब ही कोइ से गल गलकर मेरी औंगुलियाँ गिर गई हैं, नाक बैठ गई है, पीप बह रहा है, चिउंटियाँ काटती हैं, मक्खियाँ दम तक नहीं लेने देतीं। हाय! मैं क्या करूँ? इस जीने से तो मर जाना बेहतर है। अगर कहीं से एक पैसा भिल जाय तो अफीम खाकर सो रहूँ! पर पैसा आवे कहाँ से? जब पेट की ज्वाला ही पंडित जी के दुकड़ों से ठंडी होती है और जब शरीर हो उनके कपड़ों से ढँकता है तब जहर खाने को पैसा कहाँ? खैर! दुख पाकर मरूँगी। अपनी करनी का दंड पाकर मरूँगी। पर हाय! उस महात्मा के उपदेश पर कान न छेने हो का यह नतीजा है। अगर मैं उस समय भी सँभल जाती, किर कोई कुकर्म न करती तो अवश्य मेरी ऐसी दुर्दशा न होती। खैर! अब पछताने से क्या? जल्दी मर जाने ही से क्या होगा? पापों का दंड यहाँ भी भोगना है और यमराज के यहाँ जाकर भी। वस जीना

मरना बगाबर है । पर हाय ! अब भी तो मेरे पूटे मुँह से भगवान् का नाम नहीं निकलता । अब भी, इतने कष्ट पाकर भी बुरी बुरी बातों की ओर चित्त हौड़ता है । अब अगर वे महात्मा जी एक बार फिर दर्शन दें तो कुछ उपदेश मिल सकता है । हाय ! मैं बहुत दुखी हूँ । रामजी मुझे मौत दें । अब सहा नहीं जाता । हाय मरी ! कोई बचाओ !” कहती हुई मथुरा ज्यों ही मूर्च्छित होकर जमीन पर गिरने लगी एक व्यक्ति ने उसे मँभाला, गिरते से बचाकर धरती पर बिठलाया, आँखों पर जल छिड़ककर उसे सचेत किया और तब उससे पूछा—

‘महात्मा कौन ?’

“हाँ ! आपने सुन लिया ? ( देखकर, अच्छी तरह निहार लेने के अनंतर पहचानकर ) आप बिना मेरे प्राण बचानेवाला कौन ? सचमुच आपने बड़ा उपकार किया है । मेरे अपकार के बदले उपकार ? आप बड़े महात्मा हैं । मैंने आप जैसे सज्जन को सताया है । महाराज मुआफ करो ।”

“हैं ! मुझे सताया है ? कब ? मुझे याद भी नहीं ?”

“वेशक आपको याद न होगी ! सज्जन दूसरों का उपकार करके याद नहीं रखा करते हैं परंतु मेरे लिये तो कल की सी बात है । मेरे हिए में हाली सी जल रही है ।”

“कहना चाहती है तो कह क्यों नहीं देती ? और न कहना चाहे मत कह । मुझे सुनने की परवाह नहीं, आवश्यकता

नहीं । मुझे केवल इतना ही पूछना था कि महात्मा कौन थे ?  
जरा पता लगाकर तो देखूँ कि कौन थे ? शायद वहाँ हों ? ”

“हाँ वहाँ थे वही, जिनके लिये आपको संदेह है । ”

“मेरा संदेह तुझे क्योंकर मालूम हुआ ? ”

“मैं सुन चुकी हूँ कि काशी में आपको पंडित वृद्धावन-विहारी और उनके गुरु के दर्शन हुए थे । उन्होंने महात्मा से वृद्धावन महाराज ने शूकरचेत्र ( सोरां ) में जाकर उपदेश लिया था । पहले पहले वह गृहस्थाश्रम में रहकर कुछ साधना करते रहे फिर घरवालों से दुख पाकर उन्होंने दुनिया छोड़ दी । पंडित वृद्धावनविहारी जब सोरां गए तो रास्ते में मैं भी उनके साथ हो गई थी । वहाँ उन महात्मा जी ने मुझे उपदेश दिया था लेकिन उसके धरती की तरह उनका बीज यों ही चला गया । ”

“भला, परंतु वह महात्मा थे कौन ? ”

“आपके पिता के, नहीं आपके गुरु महाराज ! मैंने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया है । मैं अब अपने किए पर बहुत पछताती हूँ । आप मेरे अपराधों को चमा कर दें तो मेरा छुटकारा हो जाय । ”

“अच्छा चमा किया” कहकर पंडित प्रियानाथ वहाँ से चल दिए । इसके अनंतर उसकी क्या दशा हुई सो बाबनवे प्रकरण में लिखी हुई है । पंडित जी ने सारा किस्सा “अथ”

से “इति” तक पंडितायिन को सुनाया । इस घटना को सुन-  
कर मथुरा के विषय में जो भाव उसके अंतःकरण में पैदा हुए  
उनके लिये कागज रँगने की आवश्यकता नहीं । हाँ ! वरुण  
गुफा के महात्मा को अपने पिता जानकर वह उदास भी हुई  
और प्रसन्न भी हुई । उदास इसलिये कि वहाँ उन्हें न  
पहचाना और राजी इसलिये कि उसके पिता इतने पहुँचे  
हुए महात्मा निकले ।

---

## प्रकरण—६६

### प्यारा सिंगारदान

“पंडित जी ! पंडित जी होत ! अरे पंडित जी ! यहाँ कोई है भी ? किवाड़ा खोलो ! किवाड़ा ! वाह खूब आदमी हैं ! भीतर सुरबुर सुरबुर बातें करते हैं मगर किवाड़ा नहीं खोलते। ( किवाड़े में लात मारकर ) ये साले टूटते भी तो नहीं हैं ।” एक, दो, तीन, चार लातें मारीं और खूब जोर जोर से मारें परंतु किवाड़े खुले नहीं। आनेवाले ने दो चार गालियाँ भी सुनाईं परंतु जवाब नहीं मिला। “खोलूँ कैसे ? अनजान आदमी है । उसके सामने जाने में लाज आती है । सरकार का प्राणायाम चढ़ रहा है । अभी उतरने में दस मिनट चाहिएँ । निपूते भोजा का कहीं पता नहीं। मुआ पड़ा होगा कहीं चंद्रखाने में। रामध्यारी और राधा दोनों ही गायब हैं । अब खुलवाऊँ भी तो किससे ? अरे नन्हा जाकर तूहीं कुंडी खोल आ !” कहकर प्रियंवदा ने बच्चों को समझाया परंतु उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। यदि जोर से कहकर समझाती है तो ध्यान छूटता है और धमकाती है तो दोनों लड़के रो रोकर घर भर ढालेंगे। बस सुरबुराहट इसी बात की थी। अंत में हारकर खिड़की में से देवरानी की ओर उसने इशारा किया और वहाँ से कांतानाथ ने आकर आ० हि०—१५

( ८२६ )

किवाड़ खोले । “क्या मैंह वरसता था अथवा डाका पड़ गया जो चिल्हा चिल्हाकर कान की चैलियाँ छड़ा डालीं । खोपड़ी खा डाली ।” कहते हुए छाटे भैया ने आगंतुक को कुछ ढाँटा और “लीजिए साहब ! सँभालिए साहब ! लाइए रसीद और इनाम !” कहकर उसने एक ट्रंक उनके आगे रख दिया । “हैं ट्रंक ? यह ट्रंक कैसा ? हमारा नहीं है । देखूँ नाम ? हैं ! नाम तो भाई साहब का है !” यों कहकर कांतानाथ ने उसे सँभालने में कुछ आनाकानी की, तब पर्दे की ओट में भौजाई से इशारा पाकर उसे रख लिया और चपरासी को इनाम देकर विदा किया ।

उसके चले जाने के बाद ऊपर ले जाकर ट्रंक खोला गया । हैवर भौजाई ने मिलकर उसका एक एक करके सामान सँभाला तो सूची के अनुसार पूरा निकला । बस उधर जहरी काम के लिये कांतानाथ चल दिए और इधर प्रियानाथ का आहिक समाप्त हुआ । आसन पर से उठकर पति-राम यहाँ आए और तब कुछ मुस्कुराकर कहने लगे—

“आपका सामान सब आ गया ? राई रक्ती पूरा ? काजल टिकुली दुरुस्त ?”

“जी हाँ दुरुस्त । आज मानों लाख रुपए पा लिए ।”

“अच्छा पा लिए तो मुबारिक हो ।”

“हाँ मुबारिक हो ! आपको मुबारिक हो क्योंकि इसमें सामान भी तो आपका है ।”

( २७ )

“क्या काजल, टिकुली, सिंदूर और रेती मैं लगाऊँगा ?”

“नहीं आप नहीं ! मैं ! मेरे लिये सौभाग्य-द्रव्य है और आपकी अदालत है !”

“अच्छी बात है !”

“हाँ बात तो अच्छी ही है परंतु कई वर्षों में क्यों आया ?”

“इसलिये नहीं आया कि तुम्हे गंगातट पर जब लठैतों ने पकड़ा तब तू चिन्हाई नहीं ! तू चिन्हाती तो शायद कोई मदह को भी आ पहुँचता !”

“हैं ! तो आपकी अदालत ने सुझाई के जवाब लिए बिना ही सजा दे दी ?”

“नहीं ! हमारी अदालत ने नहीं दी । संयोग की अदालत ने दी !”

“ठीक । तो इस मुए संयोग ने ही मेरी जवान बंद कर दी । न वे कोरोफार्म सुँधाते और न मैं बेहोश होती ।”

“ठीक है ! मुनासिब है !”

“हाँ मुनासिब तो है परंतु इस ट्रॉक के आने में इतनी देरी क्यों हुई ? मशुरा स्टेशन पर पुलिस पर आपका प्रभाव पड़ता देखकर तो मैंने समझा था कि पाँच सात दिनों में आ जायगा । उस समय जब आपने पुलिस को इतना दबदबा दिखलाया था तो फिर भीड़ में से निकलने के लिये उससे मदद क्यों न ली ? यह तो मैं तब पूछना ही भूल गई थी ।”

“यदि हुजूर तब पूछना भूल गई थीं तो अब सहीं । अब पूछ लीजिए । दबदबा उसी पर चला करता है जो दबता दबाता है । दबदबा चले तो घर की जोरू पर चले, जिसका भी अब जमाना नहीं रहा । अब जोरू खसम और ( विनोद से ) खसम जोरू । तैने ही एक बार जोरू बनकर उमर भर के लिये मुझे जोरू बना लिया ।”

“जन्म भर के लिये ही नहीं ! जन्मजन्मांतरों तक, भगवान् सदा ही मुझे आपकी दासी बनाए रखें । मैं जोरू और आप खसम ! अथवा कभी पलटा खा जाय तो आप जोरू और मैं खसम ! अथवा पारी पारी से ।”

“जैसी सरकार की मर्जी ! राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है, याँ यों भो बाह वा है तो यों भो बाह वा है ।”

“और क्या यों नहीं—“है इत लाल कपोत ब्रत, कठिन नेह की चाल, मुख सें आह न भाखियो निज सुख करो हलाल ।” और वह नेह भी बनावटी नहीं । बनावटी नेह में तुरंत ही “चीनी में बाल” आ जाया करता है । हंपती का नेह अलौकिक होता है । यदि उसमें ईश्वर की सत्ता न हो तो प्राणनाथ की चिता में अपने प्यारे प्राण कौन होम दे । संसार में सबसे बढ़कर प्यारा प्राण होता है किंतु हिंदू नारी के लिये प्राणों से भी प्यारा प्राणप्यारा है ।”

“हाँ बेशक !”

“हाँ बेशक नहीं मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।”

( २२८ )

“हाँ सरकार लीजिए । उत्तर लीजिए और जो चाहे सो लीजिए । सब कुछ हाजिर है । अच्छा सुनिए । दबदबा जमाया नहीं था स्वभाव से उस पर पड़ गया हो तो जुही बात है । और यदि पड़ा भी तो मेरे नाम का कार्ड पढ़कर खाक के सुपरिटेंडेंट का आहशा जानने से । बस आहशा गया और दबदबा भी साथ ही चला गया । और पुलिस से मदद न लेने का कारण तू जानती है । बस रेल की यात्रा का अनुभव ।”

“खैर ! यह तो हुआ परंतु ट्रॉक देरी से क्यों आया ?”

“अरे इतनी चटपटी ! इतनी घबड़ाहट !! इस ट्रॉक पर इतना प्रेम !!!”

“प्रेम न हो ? इसमें प्राणप्यारे की यादगार है । पहले दिन की बखशिश है !”

“अब तो ( हँसकर ) बड़ो बड़ी बखशिशों मिल गईं !”

“हाँ ! मिल तो गईं परंतु इस सिंगारहान का आनंद इसी में है । यह दाँपत्य प्रेम के साहित्य-शास्त्र का प्रथम पाठ है । इसमें ऐसी सामर्थ्य है कि यह उस दिन का फोटो खड़ा कर देता है ।”

“अच्छा तो देरी से आने का कारण यह हुआ कि अद्वालत में पहुँचने पर इसका एक और दावाहार खड़ा हो गया था । इसके लिये वकील करने पड़े, गवाह और सुबूत पेश करने पड़े यहाँ तक कि जो जो चीजें इसमें थीं उनके खरीदने तक का सुबूत देना पड़ा ।”

( २३० )

“ओहो ! तब इसके लिये आपको बहुत परिश्रम करना पड़ा, बहुत खर्च करना पड़ा । तब इससे, विशेषकर इस (खोल-कर दिखाती हुई) सिंगारदान से और भी प्रेम बढ़ गया ।”

“प्रेम बढ़ते बढ़ते कहीं यहाँ तक न बढ़ जावे कि मेरा प्रतिद्वंद्वी खड़ा हो जाय, हिस्सेदार खड़ा हो जाय ।”

“जाओ जी ( लजाकर ) ऐसी बातें न करो । हिस्सेदार बन जाय तो मुझे को अभी तोड़ मराड़कर केंक दूँ ।”

“नहीं नहीं ! सरकार नाराज न हूजिए । कुसूर इसका नहीं, मेरा है । जो सजा देनी हो मुझे दीजिए । तावेदार हाजिर है ।”

“आपको ! ( शर्माकर ) आपको सजा ! आपको सजा यही है कि कृष्णचरित्र का कुछ रहस्य समझाइए । आपने ( चौदहवें प्रकरण में ) पहले एक बार, शायद मयुरा में, बादा भी किया था ।”

“हाँ ! उस समय बहुत हिस्सा समझाया था और अध्यात्म सुनाने का बादा भी किया था । जो जो बातें उस समय कही थीं वे तुझे भली प्रकार याद होंगी । उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं । अध्यात्म का नमूना श्रीमद्भागवत के “पुरंजनेपाख्यान” में है । उसमें जैसे सारा किस्सा शरीर पर घटाया गया है वैसे ही विद्वान् सारे ही कृष्णचरित्र को, रामचरित्र को मनुष्य के शरीर पर घटाते हैं । एक महात्मा ने “तुलसीकृत रामायण” की सारी कथा आदमी के

( २३१ )

शरीर पर घटा दी है। “प्रबोधचंद्रोदय” भी इसका नमूना है और “महामोहविद्रावण” भी ।”

“अच्छा तो थोड़ा सा और स्पष्ट कर दीजिए ताकि इन पुस्तकों से टटोलने में सुगमता रहे ।”

“आनंद तो उन श्रंथों को पढ़ने ही से आवेगा, और उनके बताए रास्ते पर चलने से समझ में भी ठीक आ सकता है। हाँ थोड़े में यह है कि उनमें अहंकार रावण और काम क्रोधादिक उसके राजस हैं और जीवात्मा हैं भगवान् रामचंद्र। उस उन्होंने सद्गुणों की सेना की सहायता से अहंकारादि को विजय किया है ।”

“तब क्यों जी ! क्या भागवत और रामायण की कथा मिथ्या है ? जब ऐसा ऐसा अध्यात्म ही भरा है तब उसे व्यास जी और वाल्मीकि जी की कल्पना समझना चाहिए ।”

“नहीं ! ऐसा कदापि नहीं ! अध्यात्म भी सल्ल है और कथा भी सत्य है। जैसा अधिकारी उसके लिये वैसा ही मसाला है। “पुर्जनोपाख्यान” लिखकर व्यास जी ने पंडितों को केवल नमूना दिखला दिया है, इसलिये कि पंडित यदि थोड़ी सी मेहनत करें तो सारे भागवत का रहस्य समझ सकते हैं ।”

“अच्छा तो अब मैं समझ गईं। परंतु मुझे तो आपका अध्यात्म कुछ नीरस सा जान पड़ा ।”

( २३२ )

“बेशक नीरस सा ही है । छहों रसों को गड्ढमड्ढ करके खा जानेवाला जो महात्मा बेदांती और संसारत्यागी विद्वान् है उसके लिये भले ही सरस हो किंतु हम भक्त जनों के लिये नीरस !”

“हाँ सत्य है । सचमुच सरस तो हरिकथा है ।”

“बेशक !”

जिस समय दंपती की इस तरह बातें हो रही थीं कमला और इंद्रिया, दोनों ही पास बैठे बैठे खेल रहे थे । कभी अपना खेल बंद करके दंपती की बिनोइ भरी बातें खूब ध्यान से सुनते, कभी इन्हें मुसकुराते हुए हेल्पर खूब चिलचिला-कर हँसते और कभी उस लिंगारदान पर अपना अपना दावा कायम करके “य मेरा !” “य मेरा !” कहकर आपस में झगड़ते, नोचते और गुश्तमगुश्ता हो जाते थे । इस खेंचतान में काजला की डिविया खुल जाने से दोनों के हाथ काले हो गए, दोनों ने अपने मुँह पर सिंदूर पोत ढाला और टिकुलियों की डिविया खुलकर वे सब बिखर गईं । बस अब आपस में आईने पर झगड़ा हुआ । एक ने दूसरे के हाथ से छीन लिया और दूसरा पहले के हाथ से छीनकर ले भागा । इस पर एक रो रोकर खूब चिल्लपों मचाने लगा । दंपती अपने ध्यान में ऐसे मस्त थे कि बालकों की हरकत पर न तो उनकी नजर गई और न कान । अंत में पंडित जी ने कमलानाथ

( २३३ )

को आईना उठाकर भागते और इंदिरानाथ को रोते देखा ।  
तब वह हँसकर कहने लगे—

“लो आपकी बखशिश की क्या गत बन गई ।”

“क्या चिंता है ? भगवान् बखशिशों देनेवाले को सलामत रखे । ऐसी ऐसी कई बखशिशों आ जायेंगी ।”

इस तरह विनोद की बातें करते करते प्रियंवदा ने अपनी चीजें सम्हालीं और लड़कों को फुसलाया ।

---

## प्रकरण—७०

### उपसंहार

जब से “राधानाथ रमानाथ” के नाम से अजमेर में दूकान खुली पंडित जी का आधा समय वहाँ और आधा यहाँ बीतता है। घर में दो तीन सवारियाँ मौजूद हैं। नौकरी को वह तिर्लांजलि दे हो चुके। बस जब जी में आया घर और जब इच्छा हुई अजमेर। यहाँ जर्मांदारी को सँभालना, गोशाला की देखभाल, कपड़े, लोई और फेलट के कारखाने का निरीचण और खेती के कामों पर नजर और वहाँ दूकान की सँभाल। “आई थो मैं हरि भजन, ओटन लगी कपास।” उन्होंने शायद “डाक विभाग और कोर्ट आफ् वार्ड्स” की नौकरियाँ इसलिये छोड़ दी थीं कि उन्हें भगवद्वाराधन के लिये भर पेट समय मिलेगा परंतु जो कर्तव्य का दास है अथवा जो अपना जीवन ही काम करने के लिये मानता है उसे अवकाश कहाँ? “अवकाश” पंडित जी के कोश में नहीं। काम की भरमार होने पर भी वह जब काम समय के विभाग करके करते हैं तब उनके घबड़ाने का वास्ता क्या? इतना परिश्रम, ऐसी ऐसी भंभटे होने पर भी वह भगवद्वाराधन में, ब्राह्मणोचित कर्म करने में और शास्त्रचर्चा में मस्त रहते हैं। उनका वहो आहिक, उनका वही भगवद्वक्ति में आत्मविसर्जन, तल्लीनता

घटी नहीं है। घटने के बदले बढ़े तो जुदी बात है। पंडित जी जितना परिश्रम करते हैं उतना, उनसे भी अधिक कांतानाथ करते हैं। काम काज का सारा बोझा उसी को सिर है। “ह्याह और सफेद” जो कुछ करे उसे अधिकार है। सब काम करनेवाला वह और निरीक्षक पंडित जी। गलतियों को सुधरना, काम को ढ़प पाए पर डालना, नई नई बातें सुझाना समझाना और काम में परिणत करना उनका काम और उनकी आज्ञा के अनुसार बर्तना छोटे भैया का। यदि कांतानाथ के हाथ से कुछ गलती हो जावे तो वह उसे फटकारते नहीं हैं, उस समय उससे कुछ कहते तक नहीं हैं, और जब वह स्थयं रिपोर्ट करे तब—“होगा जी ! काम करनेवाले के हाथ से चूक भी होती ही आई है !” कहकर उसको संतुष्ट कर देते हैं और फिर अवसर निकालकर समझाते हैं। बस वह भी इनका “हुक्मी बंदा” है। परिणाम यह कि दोनों भाइयों का प्रेम राम भरत के अलौकिक प्रेम की याद दिलाता है।

इस तरह जब पंडित धंधुओं का परस्पर असाधारण प्रेम है तब दोनों देवरानी जिठानी सभी माँ-जाई बहनों की तरह मिलकर रहती हैं। अक्सर देवरानी जिठानी में, खास बहू में ननद भौजाई में, मा बेटी में और वहन बहन में परस्पर लड़ाई होती देखी है। यदि स्वार्थ के विरोध में झगड़ा हो तो जुदी बात है किंतु नहीं—अविद्या से, बिना बात ही, हलकी हलकी बातों पर आपस में लड़कर वे एक दूसरी की जानी दुश्मन बन-

जाती हैं। और हिंदुओं का यहो कौटुंबिक कलह हिंदू समाज की दृढ़ मिति को कुदालें मार मारकर ढाह रहा है किंतु अब पंडित बंधुओं के संयुक्त कुटुंब में कलह कसम खाने के लिये भी नहीं। रमणी जाति में परस्पर की कलह होने के जो कारण हैं वे जब इनके घर में प्रवेश तक नहीं कर सकते तब कलह हो भा तो क्यों हो ? दोनों नारियाँ पति-सेवा में दत्तचित्त हैं। स्वप्र में भी पति की आज्ञा का, उनकी इच्छा का उल्लंघन करना वे जब घोर पाप समझती हैं तब उनके घर में अवश्य ही आनंद विराजमान है। सचमुच ही प्रियंवदा और अब उसकी शिक्षा से, उसकी देखा देखी सुखदा भी आदर्श बन गई है। भगवान् ने जैसी नीयत दी है वैसी बरकत भी दी है। इनके घर का हर एक काम धर्म के अनुकूल होता है। धर्म-विरुद्ध लाख रुपया भी इनके लिये विष है, बुरी चीज है, स्पर्श करने योग्य नहीं। जिनका सिद्धांत ही यह है—

“हृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेजलम् ।

शास्त्रपूतं वदेद्राक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥”

फिर इनके घर में सुख का निवास क्यों न हो ? ईश-कृपा से इस समय सफलता इनकी चेरी और सुख इनका दास है। सुख की शोभा भी इसी में है कि वह ऐसे धर्मशील की चरण-सेवा में प्रवृत्त हो। केवल कल्पना के मनोराज्य में आना पाई से हिसाब देने की अथवा “हाथी के दाँत दिखाने के और और खाने के और” की तरह भूठ रिपोर्ट प्रकाशित करने

की इन्हें आवश्यकता नहीं । अतिथिसत्कार के लिये, साधु महात्माओं की सेवा करने के लिये जैसे इनका दरबार खुला हुआ है वैसे इनके अनेक लोकहित के कामों को, व्यापार धर्घों को देखने का जनसाधारण को अधिकार है । जिस किसी की इच्छा हो इनके यहाँ आकर बारीकी से इनका काम देख सकता है और इनके अनुभव से लाभ उठा सकता है अथवा इनके कामों की नकल कर सकता है । यों इनके यहाँ दोनों बातों में छूट है । रोक टोक का नाम नहीं । देशी कारीगरी और देशी व्यापार की उन्नति के लिये इनकी राय यह है—

“सचाई का बर्ताव होना चाहिए । भूठ बोलकर अनाप सनाप नफा लेने से कम नफे में एक ही भाव पर चीज बेचना जितना आवश्यक है उतना और कुछ नहीं । केवल लेकचर-बाजी से काम नहीं चलेगा । जो कुछ करना हो उसे करके दिखला देना चाहिए । मैं उसे बहुत ही नीच समझता हूँ जो व्याख्यान देकर गला फाड़ने में बहादुर है, जो औरों के विलायती कपड़े उतरवाकर जला देने में शूर है किंतु स्वयं बर्ताव के नाम पर बिंदी । औरों को भड़काकर उपद्रव खड़ा करना और यों हाकिमों को नाराज करना अच्छा नहीं । जो शांति-पूर्वक दृढ़प्रतिज्ञ होकर काम करनेवाला है उसका अनायास अनुकरण होने लगता है । बस खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है । यही देश की उन्नति का मूल सूत्र है । कानफरेसों की धूम, लेक्चरों का गर्जन और आडंबर का ठाठ

करके यदि धर्य तक इतना रुपया, समय और बुद्धि नष्ट न की जाती अथवा अब भी न की जाय तो देश का सौभाग्य है ।”

अतिथि-सेवा के लिये भी यह धर आहरी है, सरनाम है और असाधारण है । “श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां, स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः । यस्यार्थिनो वा शरणागता वा नाशाविभंगा विमुखाः प्रयांति ।” का आप उदाहरण हैं । अतिथिसत्कार के लिये यदि परिश्रम उठाना पड़े, हानि भी क्यों न हो और द्रव्य चाहे जिसना खर्च हो जाय यह मुख नहीं सोडते हैं । भूले भटके साधु गृहस्थों को सुपथ पर लगाना और ऐसे अच्छे अच्छे नमूने पैदा करना इनका काम है ।

सनातनधर्म की उन्नति और सामाजिक दुर्दशा का सुधार करने के विषय में इनके जो रुपाल हैं वे इस उपन्यास में समय समय पर, स्थान स्थान में कार्य रूप पर व्यक्त किए गए हैं । आवश्यक आवश्यक विषयों में से शायद निकलें तो ऐसे विरले ही निकल सकते हैं जिनके लिये इन्होंने कुछ नहीं किया अथवा कहा न हो । हाँ ! समष्टि रूप पर इनकी राय यह है—

“हिंदू-धर्म, हिंदू-समाज संसार के यावत् धर्मों का मूल है। दुनिया में जितने धर्म हैं उन सबके सबही अच्छे सिद्धांत, मूल तत्त्व इसमें पहले से विद्यमान हैं। केवल देखनेवाला चाहिए। “कौवा कान ले गया” की कहावत की तरह कौवे के पीछे मत दौड़ो। पहले अपना कान सँभाल लो। तुम्हारे

यहाँ सब कुछ है और जो कुछ है वह लाखों वर्षों के अनुभव से अनुकूल सिद्ध हो चुका है। परायें की नकल करके अपने ही हाथों से अपने पैरों पर कुर्हाड़ी मारने के बदले प्राचीनों के सुमार्ग पर चलने ही में तुम्हारा कल्याण है। जहाँ कहीं थोड़ा बहुत अंतर पड़कर समय के प्रतिकूल दिखलाई दे वहाँ शास्त्र के अनुसार, वृद्धों की सम्मति से ठीक कर लो। परायें की नकल करना अच्छा नहीं है। अन्य देशों की सभ्यता में जो जो तुम्हें चमकदार दिखलाई देता है उस सबको ही सोना समझना तुम्हारी भूल है। परदेशियों के ऐसे सद्गुणों की नकल करो जिनमें तुम्हारे भारतवासीपन पर, हिंदूपन पर आधात न पहुँचे। पुराने और नए ख्यालों की दलादली कदापि न बढ़ने दो। जिन बातों के विषय में पुराने और नए का मत-भेद हो उन्हें मत छोड़ो। उनके लिये पहले शास्त्रों का गनन करो किंतु जो निर्विवाद हो उनमें एकमत होना, परस्पर के मत-भेद को निकालकर पुराने और नए समाज यदि एक सूत्र में बँध जायें, अनेक जातीय सभाएँ स्वतंत्र रूप से चलने पर भी उनका केंद्र एक हो जाय और एक ही उद्देश्य को लेकर वे सब कार्य करे तो उन्नति सहज में हो सकती है। धर्मसभा और आर्यसमाज, सुधारक और उद्धारक का अधिक समय आपस के लड़ाई भगड़ों में, एक दूसरे को नीचा दिखाने में जाता है। त्रिटिया सम्राज्य की छत्र-छाया में, उन्नति के सुअवसर पर एकता बढ़ने के बदले फूट फैलती

है। और इस सभय की इतिहासप्रसिद्ध शांति का दुरुपयोग होता है, उस पर कुठाराघात है।”

राजनीतिक कामों के विषय में वह प्रायः उदासीन से हैं। उनका मत है कि “जब इस विषय का आंदोलन करने में सैकड़ों बड़े बड़े आदमी दत्तचित्त हैं तब मैं अपना सिर क्यों खपाऊँ ?” किंतु जब उनसे इस विषय में कोई कुछ जिक्छेड़ देता है तब वह कहा करते हैं—

“जिन बातों को देने का सरकार ने बाढ़ा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते हैं उन्हें सरकार से माँगें। जब माता पिता भी बेटे बेटी को रोने से रोटी देते हैं तब राजा से माँगने में कोई वुराई नहीं है। तुम ज्यों ज्यों माँगते जाते हो त्यों धोरे धोरे वह देती भी जाती है। किंतु काम वही करो जिससे तुम्हारे “नरणां च नराधिपः” इस भगवद्ग्राम्य में बढ़ा न लगे। भगवान् के इस बचन से जब राजा ईश्वर का स्वरूप है तब उसकी गवर्मेंट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिये नियमबद्ध आंदोलन करना आवश्यक और अच्छा है किंतु जो मुठमर्दी करनेवाले हैं, जो उपद्रव खड़े करके डरानेवाले हैं अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिये औरों के प्राण लेने पर उतार होते हैं उनके बराबर दुनिया में कोई नीच नहीं, पामर नहीं ! वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं। वे स्वयं अपनी नाक कटाकर औरों का अपशक्ति करते हैं। उनसे अवश्य घृणा

( २४१ )

करनी चाहिए । जो काम स्वयं करने के हैं उन्हें करके अपने आओंको औरों के लिये नमूना बनाओ । बस सीधा मार्ग यही है ।”

संतानों का भी पंडित जो को सुन कम नहीं है । कमला-नाथ और इंदिरानाथ गत दकरणों में प्रकाशित घर की शिक्षा समाप्त करके हिंदू यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा पा रहे हैं । इनके घर के अध्ययन का ठंग देखकर विश्वविद्यालय के कर्ता धर्मांग्रें ने उसे पसंद किया है और औरों को इनका अनुकरण करने की सलाह दी जाती है । लड़के दोनों चतुर हैं, बुद्धिमान हैं, सुशील हैं, परिश्रमी हैं और सदाचारी हैं । इनके अतिरिक्त दोनों के और भी कई लड़के लकियाँ हैं । कई एक का विवाह होकर बहुओं का भी आगमन हो गया है । बस इनका घर यों फलती बेत है, लहलहाती लता है ।

इस यात्रा में इन्होंने जहाँ जहाँ दीनशालाएँ खोलने की, पंडों को शिक्षा दिलाकर सुधारने की, तीर्थों के अनेक कुरक्म नष्ट होकर भलाई का प्रचार होने की, गोरक्षा, कुष्ठाश्रम और जोवदया-विस्तार की सलाह दी है वहाँ वहाँ सफलता होने की खबर पाकर इन्हें आनंद होता है, होना ही चाहिए । वह स्वयं किसी न किसी प्रकार से अवकाश निकालकर ऐसे ऐसे अनेक लोकहितकारी कामों में योग देते हैं, चंदा देते हैं और काम करने के लिये आंग बढ़ाते हैं । जब इन्हें परमेश्वर की अनन्य भक्ति का, अपने तप का, अपने “विल पावर” का

और अपने सदाचार का बल है तब उनके कथन का, उनके कामों का औरें पर अच्छा असर पड़ता हो तो आशर्य क्या ? क्योंकि यह उन लोगों में से नहीं हैं जो - -

“परोपदेशे पाणिहत्यं सर्वेषां सुकर” नृणाय् ।

धर्मं स्वीयमनुष्टाने कस्यचित्सुमहात्मनः ॥”

इस लोकोक्ति में “पूर्वार्द्ध” के अनुयायी हैं । औरों को वही भुक्त सकता है जो पहले स्वयं भुक्ता है । दुनिया ऐसे ही सज्जन के हाथ से भुक्ने को तैयार है जो करके दिखा देता है । संसार के इतिहास में उसका ही आदर है, वही पूजनीय देवता है । हमारे अवतार इसी लिये ईश्वर हैं और प्राचीन ऋषि मुनि देवता । ऐसे महात्माओं के एक दा नहीं हजारों ही चित्र हमारे पुराणों में हैं, इतिहासों में हैं और जो इनमें नहीं हैं वे परंपरा से धरोहर में प्राप्त जन समुदाय के हृदय-मंदिर में हैं । केवल उनसे लाभ उठानेवाला चाहिए, शक्ति चाहिए और वह पंडित जो की तरह भगवान् के चरण कमलों में सज्जी लौं लग जाने से प्राप्त हों सकती है । पंडित जो का चरित्र वास्तव में हिंदू-समाज का आदर्श है । लेखक की कल्पना ने जैसा गढ़ा है वैसे अनेक पंडित जो को पैदा होने की आवश्यकता है । पंडित जो अपने मन में—

“निशिवासर वस्तु विचारहि के, मुख साँच हिए करुणा धन है । अघ निश्रह संग्रह धर्म कथानि, परिप्रह साधुन को गन है ॥

( २४३ )

कहि केशव भीतर जोग जगै, अति बाहिर भोगिन सों तन है ।  
मन हाथ सदा जिनके तिनको, बन हो घर है घर हो बन है ॥”  
इसके अनुयायी हैं—

“अजरामरवत् प्राङ्गो विद्यामर्थं च चितयेत् ।  
गुहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥”

यही उनका मोटो है। लेखक के मनोराज्य में ऐसे हीं  
पंडित जी ने निवास किया है और ऐसे ही हिंदू को “आदर्श  
हिंदू” की पदवी प्रदान होती है।